गंगा-पुस्तकमाला का १८६वाँ पुष्प

प्रत्यागत

[सामाजिक उपन्यास]

लेखक
वृंदावनलाल वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०
[गढ़-कुंडार, विराटा की पद्मिनी, कुंडली-चक्र,
संगम, लगन, प्रेम की भेंट, धीरे-धीरे
आदि के रचयिता]

—:*:—

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, लाटूश रोड
लखनऊ

तृतीयावृत्ति

सजिल्द २)] सं० २००० वि० [सादी १॥)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

[illegible]

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

स्मृति-चित्र

अपने पूज्य देवता

के

चरणकमलों में

"ब्राह्मण का लड़का होकर तू खिलाफ़त-विलाफ़त के झगड़ों में क्यों पड़ता है ?"

"देश-हित के बाधकों का उससे संवरण होगा, केवल इसीलिये; वैसे तो मैं इस शब्द का ठीक-ठीक अर्थ भी नहीं जानता।"

प्रश्नकर्ता अधेड़ अवस्था के वृद्ध-शरीर पुरुष थे, और उत्तर देनेवाला अठारह-उन्नीस वर्ष का एक युवा।

वृद्ध पुरुष बाँदा के रहनेवाले धर्मभीरु, शांत-स्वभाव टीका-राम शर्मा थे, और युवा उनका आत्मज मंगलदास चंचलवृत्ति, सहसाप्रवर्ती, लाड़-दुलार का बिगड़ा हुआ बालक। देश की आन पर प्राण न्योछावर कर डालने की बात वह अपने मुँह से अनेक बार कह चुका था। इसलिये टीकाराम को अपने लड़के पर प्यार के अलावा अभिमान भी था। उस हलके शरीर के सुंदर-मुख युवक पर टीकाराम शायद ही कभी नाराज़ हुए हों। किसी पर भी टीकाराम शायद ही कभी नाराज़ हुए थे। परंतु उनकी ढली हुई आँख जब तिरछी गरदन के साथ नीची हो जाती थी, तब लोगों को मालूम होने लगता था कि बिना किसी तूफ़ान के यह जो कुछ हठ करेंगे, उसका निवारण

संसार में सिवा उनके लड़के मंगलदास के और कोई न कर सकेगा।

टीकाराम ने अपने ज़माने में फलित ज्योतिष की बारीकियों से इतना रुपया कमाया था कि उन्हें मंगलदास के भविष्य की अधिक चिंता न रही थी। ज्योतिष या और किसी भी शास्त्र की ओर लड़के की बहुत रुचि न देखकर और उसकी चंचलता में किसी भावी विद्वान् की छाया परखकर कई बरस अँगरेज़ी पढ़ाई। जब बहुत दिनों स्कूल में तालीम पाई, तो अँगरेज़ी ज़रूर उसने बहुत सीख ली होगी। परंतु, जहाँ तक लोगों को मालूम है, मंगलदास ने कोई विशेष परीक्षा पास नहीं की। हाँ, वितंडाशास्त्र पर अवश्य ही उसका पूरा अधिकार हो गया था। एक दिन देश-प्रेम की, या मन की, लहर ने उसे स्कूल से विदा लेने पर मजबूर कर दिया।

टीकाराम और सब कुछ सह सकते थे, परंतु दुलारे लड़के को भी धर्म और धर्म-रूढ़ियों के मार्ग से विचलित होते देखकर सहन नहीं कर सकते थे। अपने विश्वासों के ख़िलाफ़ बातें करने और सोचनेवालों से उन्हें बहुत घृणा थी। सबके साथ मृदुल बरताव करनेवाले टीकाराम अपने विश्वास-विरोधियों को खोटी सुनाने से भी न चूकते थे। यद्यपि वह शास्त्रार्थ करने के बखेड़ों से दूर रहते थे, परंतु अकेले में नास्तिक से भी कहीं अधिक कठोरतर शब्द के व्यवहार से उन्हें कौन रोक सकता था ?

मंगलदास भी शास्त्रार्थ को व्यर्थ समय-विनाश के सिवा और कुछ नहीं समझता था, परंतु मनोरंजकता के लिये वितंडावाद करने में अरुचि न थी। हँसी-मजाक उसके अनुकूल था, और वह किसी पुरुष या विश्वास की दिल्लगी उड़ाने से न चूकता—केवल अपने पिता के धार्मिक विश्वासों को छोड़ देता था। धर्म के संबंध में उसने सुना बहुत था, परंतु मनन कभी नहीं किया था।

खिलाफ़त-कमेटियों की जिस समय गरम हवा चल रही थी, उस समय, किसी धर्म के नाते नहीं, बल्कि अपने राजनीतिक संतोष के लिये, मंगलदास ने खिलाफ़त-आंदोलन में खूब भाग लिया। वैसे मंगलदास पर टीकाराम कोई विशेष निगरानी नहीं रखते थे—चाहे जो किया करता था। परंतु सभा-समाजों में जिनके व्याख्यानों पर करतल-ध्वनि होती है, उन्हें लोग कोशिश करने पर भी विख्यात होने से नहीं रोक सकते। इसीलिये टीकाराम के कानों में भी उसकी यह कीर्ति पहुँची।

मंगलदास के कारण बाँदा-ज़िले में खिलाफ़त-आंदोलन को खासा जोर मिला, और वह स्कूल छोड़ने के बाद अंत में खिलाफ़त-कमेटी का संयुक्त मंत्री भी हो गया। यह बात टीकाराम को एक दिन भजन-पूजन की समाप्ति पर मालूम हो गई। लड़के की कीर्ति से बाप का पुलकित हो जाना स्वाभाविक है, परंतु मंगलदास की यह कीर्ति सुनकर टीकाराम को न-मालूम क्यों कुछ संकोच-सा मालूम हुआ।

भोजन के उपरांत पान खाते हुए बाप ने बेटे से उपर्युक्त प्रश्न किया—"ब्राह्मण का लड़का होकर तू खिलाफ़त-विलाफ़त के झगड़ों में क्यों पड़ता है ?"

मंगलदास का उत्तर पाने पर टीकाराम ने कहा—"देश का इससे क्या उपकार होगा रे ?"

मंगलदास बोला—"दादाजी, जिन-जिन बातों से अँगरेज़ परेशान हों, उन-उन बातों से देश को लाभ होगा।"

"यह सब वाहियात है। अरे, और यह खिलाफ़त है क्या ?"

"ठीक-ठीक यह क्या है, सो तो मुसलमान भी नहीं बतला सकते, परंतु इसमें संदेह नहीं कि हिंदू-मुसलमानों में इसके कारण बहुत मेल-जोल पैदा हुआ है। देश के लिये यह कम कल्याणकारक नहीं है।"

"आख़िर यह लड़ाई है किस बात की ?"

"इस बात की कि मुसलमानों के एक बड़े भारी पुरुष को, जो टर्की में रहते हैं, अँगरेज़ों ने अपमानित किया है, और उनका राज्य छीन लिया है। उन्हीं की मदद के लिये सब हिंदू-मुसलमान अपना पूरा बल लगा रहे हैं।"

"टर्की क्या है रे ?"

"इतना सब सवाल दादाजी, बेकार है। संसार के नक़्शे में यहाँ से दो-तीन हज़ार मील दूर मुसलमानों का एक बड़ा राज्य है।"

विश्रांति की साँस लेकर टीकाराम हँसकर बोले— ज़रा-सी बात के लिये इतनी खलबली करते हो जो तुम लोग! परंतु तू अब उस सभा का सयुक्त मंत्री होकर क्या अरबी पढ़ेगा ?"

मंगलदास हँसने लगा। बोला—"दादाजी, गले को एक साथ ही संकुचित और विस्तृत करने से थोड़े-से ही समय में जो विभिन्न शब्द-समूह उच्चारित हो, वही मेरे लिये अरबी-भाषा हो जायगी, परंतु ऐसी क्लिष्ट चेष्टाओं के लिये ख़िलाफ़त कमेटी की स्थापना नहीं हुई है।"

"है तो अच्छा," टीकाराम ने अपनी आधी सफ़ेद और आधी काली दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—"इससे यदि हिंदू-मुसलमानों का स्थायी मेल-जोल स्थापित हो जाय, तो अच्छा होगा; परंतु क्यों जी, इस ख़िलाफ़त के खत्म होने पर फिर कौन-सा उपद्रव करोगे ?"

मंगलदास ने हँसते हुए कहा—"कुछ-न-कुछ तलाश कर लेंगे।"

(२)

मंगलदास का विवाह छुटपन में हो गया था, और गौना इत्यादि भी। उसकी मा पौत्र-प्राप्ति की अभिलाषा में महीने में कई व्रत रक्खा करती थी, और पुत्र तथा वधू के बहुत कहने-सुनने एवं मनाने पर भी अपने शरीर की छीज को रोकने का कोई उपाय नहीं करती थी। उस पर सदा हाथ-भर का घूँघट

डाले रहने के कारण मंगलदास की पत्नी को सवा हाथ का डाले रखना पड़ता था। परंतु वह नित्य-नैमित्तिक पूजा-अर्चा अपनी सास से अधिक करती थी, और चूल्हे-चौके के कार्य में भी कभी त्रुटि नहीं होने देती थी।

मंगलदास हैरान था कि इतना सब काम घर-भर के लिये काफ़ी होने पर भी पौत्र की इच्छा मा को क्यों परेशान किए रहती है।

टीकाराम वैष्णव थे, इसलिये वैसे भी जप और पाठ में बहुत समय बिताते थे, किंतु कुछ दिनों से रामायण के सुंदर-कांड का पाठ विशेष रूप से करने लगे थे। बस्ती में कई जगह बहुत-से लोग मिलकर, गा-बजाकर प्रति मंगल और शनिवार को रामायण का पाठ किया करते थे। एक स्थान पर टीकाराम भी नियम-पूर्वक जाते और रामायण में श्रद्धा के साथ भाग लेते थे। मंगलदास भी कभी-कभी शरीक हो जाता था। कंठ मधुर होने के कारण उसे रामायण-गायन में बहुत आनंद प्राप्त होता था। परंतु एक ही प्रकार के आनंद में बहुत काल तक संलग्न रहना मंगल की प्रकृति में न था, इसलिये उनके बहुत-से नाग़े भी हो जाते थे। बड़े-बड़े त्योहारों पर रामायण-पाठ विशेष समारोह और सजावट के साथ होता था।

जिस रामायणवादिनी सभा में टीकाराम और मंगलदास जाते थे, उसके सभापति दफ़्तर के एक बाबू नवलविहारी

शर्मा थे। चढ़ती अवस्था के एक हट्टे-कट्टे व्यक्ति थे। आँखों में प्रभुता और चेहरे पर मुस्किराहट खेला करती थी। उन्होंने अनेक शास्त्रों को तो न मथा था, परंतु अँगरेज़ी गए ज़माने के एंट्रेंस तक पढ़ी थी, और अपने धर्म का जितना रूप उन्होंने देखा और सुना था, उसमें उनका कट्टर विश्वास था। दफ़्तर में अपने साहब के सिवा वह और किसी से बिलकुल न डरते थे। दफ़्तर में या बाहर जो कोई उनसे 'पंडितजी, पालागन' कहता, उसे वह इतने कृपालु भाव के साथ आशीर्वाद देते, मानो जागीरें लगा रहे हैं। उन्होंने अपने मन में क़रीब-क़रीब सभी बातों के पैमाने बना रक्खे थे। उन पैमानों पर जो ठीक न उतरता, उसकी, और नहीं तो, उनके जी में ख़ैर न थी।

बाँदा में कई दर्जन रामायण-सभाएँ थीं। उन सबों पर पं० नवलविहारी की कारगुज़ारी और धर्मारूढ़ता की छाप थी।

कंठ उनका सामूहिक गायन-वादन के भी लायक़ न था, परंतु इससे नवलविहारी कभी हतोत्साह नहीं हुए। सबसे ऊँचा मेरा कंठ बोले, इस धुन में जब वह रामायण कहते थे, तब उनको यह नहीं मालूम पड़ता था कि साथ के गानेवाले सब-के-सब उनके स्वर के पैमाने से बेसुरे हो रहे हैं। प्रति मंगल और शनिवार को रामायण-पूजन के बाद फूलों की सभापतित्व-सूचक एक बड़ी-सी माला उनके गले में डाली

जाया करती थी। बड़े त्योहारों पर खास तौर पर जो बड़ी और रंग-विरंगी पुष्पमाला उनके गले में डाली जाती थी, उससे उनके नेत्रों की प्रभुता की श्री और भी बढ़ जाती थी। उस समय वह आदि से अंत तक सतर्कता के साथ यह देखा करते थे कि कोई रामायण-पाठ में कसर तो नहीं करता।

उस दिन रामनवमी का विशेष उत्सव था, और खास सज-धज तथा सजावट के साथ मंदिर में, जो नवलविहारी ही का था, रामायण के पाठ की तैयारी हुई थी। मूर्ति की भी अनोखी सजावट की गई थी। स्त्रियाँ भी पाठ सुनने और देव-दर्शन के लिये आई। मंगल की मा और पत्नी सोमवती भी उनमें थीं। मंगल के पिता उस दिन विशेष भक्ति और तन्मयता के साथ रामयश-गान में लीन हुए।

परंतु मंगलदास की चपल प्रकृति में देर तक गंभीर रहना असंभव नहीं, तो बहुत कठिन अवश्य था।

उस दिन फूलों के कई बड़े-बड़े गजरे डाले हुए पं० नवल-विहारी ने विशेष झूम-झूमकर गायव-वादन शुरू किया। आवाज की ऊँचाई में भी कुछ अधिक उन्नति जान पड़ती थी।

मंगलदास भी कीर्तन में भाग ले रहा था, परंतु उसके जी में बड़ी देर से जो बात उठ रही थी, उसके सुनाने के लिये वह सुपात्र श्रोता की तलाश में पागल-सा हो उठा। अधिक समय तक उस वृत्ति का नियंत्रण न कर सकने पर कुछ दूर पर गाते हुए अपने से कुछ कम उमर के एक लड़के के पास

जा बैठा। इस हरकत को देखकर सभापतिजी ने आँख तरेरी। टीकाराम भी देखकर ज़रा व्यथित हुए, परंतु कीर्तन में कोई खास रुकावट नहीं पड़ी।

जब और सब लोग गा रहे थे, तब मंगलदास ने उस लड़के के कान में कहा—"पंडितजी गजरों के भार से टूटे-से जा रहे हैं।"

लड़के ने गौर के साथ पंडितजी की ओर देखा; और पंडितजी तो देख ही रहे थे; लड़के ने दूसरी ओर दृष्टि फेर ली। पंडितजी समझ गए कि मेरे विषय में ही कुछ कहा है। मंगलदास ने देखा कि लड़के के मन में चलबुली पैदा नहीं हुई, तब चुटकी लेकर बोला—"ज़रा सुनो जी, सब लोग गा रहे हैं, अकेले हमारे-तुम्हारे गले बंद रहने से उत्सव फीका न पड़ेगा।"

लड़के ने डरते-डरते नीची निगाहों से पंडितजी की ओर ताककर कहा—"कहो न, जल्दी, क्या कहते हो। पंडितजी हम लोगों की ओर घूर रहे हैं।"

लड़के ने एक अनूठी बात कहने का प्रयत्न किया था। तुरंत मंगलदास ने कान में बड़ी गंभीरता के साथ कहा—"कैसा भैंसे की तरह रेंकता है!" अनूठी बात कहने के प्रयत्न ने इस ठठोली के लिये उस लड़के के मन में बेक़ाबू जगह कर दी थी। भैंसा और रेंकना! खिलखिलाकर हँस पड़ा। मंगलदास को भी अपने ही शब्द-चातुर्य पर हँसी आ गई।

दोनो ने होंठ काटकर हँसी को रोकना चाहा। न रुकी। तब कपड़ा मुँह में दबाया। फिर भी हँसी का तूफ़ान न रुका। रामायण का पाठ बंद हो गया। सबकी त्योरियों पर बल आ गए। पंडितजी ने गरजकर कहा—"क्यों रे अहमक़ो, क्या यही स्थान तुम्हें ठिलठिलाने के लिये मिला था ?"

एक क्षण के लिये दोनो की हँसी बंद हो गई, परंतु भैंसे के रेंकने का चमत्कार स्मरण करके फिर दुगुने वेग के साथ दोनो हँस पड़े। टीकाराम दाँत पीसकर चुप रहे। नीची आँख और तिरछी गर्दन करके कुछ सोचने लगे। नवलविहारी ने कहा—"मैं जानता हूँ। यह सब आरिया समाज की हवा का नतीजा है। तुम्हीं-सरीखे कपूत हिंदू-समाज को गड्ढे की ओर लिए ज़ा रहे हैं।"

इस आक्षेप को सुनकर दोनो अप्रतिभ हो गए। बिलकुल गंभीर। हँसी ऐसी बिदा हुई कि अपनी एक रेखा भी न छोड़ गई। मंगलदास का साथी परिताप में डूबने-उतराने लगा।

टीकाराम ने आँख उठाकर कहा—"क्यों जी, क्या बात थी ? कथा के बीच में यह तूफ़ान क्यों उठाया ?"

"कुछ भी तो नहीं।" कहकर मंगलदास दूसरी ओर देखने लगा। तब नवलविहारी ने संपूर्ण गुत्थी को उसी समय सुलझा डालने के निश्चय से प्रखर स्वर में मंगल के समदोषी साथी से पूछा—"क्यों रे बाबूराम, क्या बात थी ? ठीक-ठीक

बतला, नहीं तो अभी तेरा नाम सभा के सदस्यों की सूची से काटकर अलहदा कर दूँगा, और कभी यहाँ न झकने दूँगा।"

बाबूराम ने संकोच के साथ कहा—"यह कहते थे।" फिर आगे कुछ न बोला गया। मंगलदास ने उसकी ओर तीव्र दृष्टिपात करके निवारण किया।

नवलबिहारी डपटकर बोले—"खबरदार, जो कोई इशारा किया। बतला रे बाबूराम, ठीक-ठीक बात।"

बाबूराम बोला—"कुछ नहीं पंडितजी।"

पंडितजी ने कड़ककर कहा—"नहीं बतलाएगा ?"

"यह कहते थे।" उस लड़के ने मंगलदास की ओर बिना देखे हुए कहा—"यह कहते थे कि पंडितजी भैंसे की तरह रेंकते हैं।"

लड़के ने दूसरे बाचकों की ओर चंचल दृष्टि के साथ देखा। दो-एक रोकने पर भी मुस्किराहट को न रोक सके थे। तब भैंसा और उसके रेंकने के विचित्र चित्र की कल्पना करके बाबूराम फिर हँस पड़ा, परंतु तुरंत उठकर वहाँ से भाग गया। मंगलदास हँस नहीं रहा था। किसी से भी निगाह न मिलाकर इधर-उधर देख रहा था। अधिकांश बाचक अत्यंत कोप के साथ मंगलदास की ओर देख रहे थे। टीकाराम की ढली हुई आँखों में एक विचित्र चमक दिखलाई पड़ रही थी। कुछ सदस्य इधर-उधर मुँह चुराकर मुस्किरा-

भी रहे थे। इनमें से एक रामसहाय वैद्य भी थे, वह बोले— "कथा आरंभ करो। इस बात को फिर सोचा-समझा जायगा।"

"नहीं, यह कोई साधारण घटना नहीं है।" नवलविहारी ने कहा—"आज यहीं समाप्त करके आरती उतारो। इन शठों को कुछ दंड दिए विना यह सभा नहीं चल सकेगी।" और अपने साथियों की सहमति का इंतज़ार किए विना ही पंडित-जी ने फटे हुए गले से दोहा समाप्त कर, रामायण की आरती उतारकर सभा विसर्जन कर दी। अंत में बोले—"टीकाराम-जी, आप-सरीखे विद्वान् और सज्जन के घर में ऐसा खराब लड़का नाम डुबाने के ही लिये पैदा हुआ है। क्या यह कोई रोजगार-धंधा नहीं करता है?"

"कुछ भी नहीं।" टीकाराम ने बड़े करुण कंठ से कहा— "परंतु अब इसे कोई-न-कोई काम अवश्य करना होगा, नहीं तो सचमुच किसी दिन इसके कारण हम लोगों की दुर्दशा होगी। लेकिन एक बात का मैं विश्वास दिलाता हूँ, यह किसी समाज-अमाज से कोई संबंध नहीं रखता।"

मंगल के पाप से दुखी नवलविहारी को उसके बाप के उस आश्वासन से संतोष नहीं हुआ। बोले—"देखा जायगा, मैं यदि इस सभा का सभापति रहा, और यदि इस धर्म-कार्य का भार मेरे ही कंधों पर आप लोग डाले रहे, तो इन लौंडों को कभी इस स्थान पर न आने दूँगा। इस तरह की

बदमाशी से मेरा नहीं, बल्कि व्यासगद्दी का अपमान होता है।"

उस दिन अपनी स्त्री और बहू को साथ लिए हुए टीकाराम घर पर बहुत दुखी आए।

(३)

कीर्तन-स्थान में अपने परिहास पर मंगलदास को जितना परितोष हुआ था, उसके फल पर उसे उतनी खिन्नता नहीं हुई। टीकाराम की ग्लानि ने भोजन की अस्वीकृति का रूप धारण किया। मंगल की मा उन्हें मनाने लगी। टीकाराम को खाने-पीने की जल्दी नहीं मालूम होती थी। बोले—"न-मालूम यह लड़का हमारे पुरखों की कीर्ति किस क्षण खाक कर देगा। तुम लोग अपना घर-बार सँभालो, मैं तो कल सवेरे ही तीर्थ-यात्रा को जाऊँगा।"

लड़के को बहुत भला-बुरा कहकर मा बोली—"तुम एक दिन दो थप्पड़ उसके मुँह पर जमा दो, तो अक़्ल ठीक हो जायगी।"

टीकाराम ने कहा—"अजी, अब क्या वह क़ाबू का है? उस पर हाथ उठाते ही कहीं मेरे ऊपर वज्र न टूटे। अब तो उसी को घर-गिरिस्ती का मालिक बनाओ, मुझसे कोई सरो-कार नहीं।"

मंगल भी इस प्रस्ताव को सुन रहा था। छिपने की उसमें वैसे भी आदत न थी। सामने आकर, हाथ जोड़कर

बोला—"दादाजी, मैं आपके हाथ जोड़ता हूँ, पैर छूता हूँ, और अपने कान पकड़ता हूँ। आगे कभी ऐसा नहीं करूँगा। अब की माफ़ कर दीजिए।"

"अरे भाई, तू अब नेता बन गया है, किसी दिन हम लोगों के प्राणों पर बनेगी।" टीकाराम ने घुटते हुए स्वर में कहा—"अब तो इस घर का सत्यानास ही समझो। धर्म-कर्म सब विलीन हो जाने को हैं।"

मंगलदास ने हार नहीं मानी। शब्दों की सहायता से काम होता हुआ न देखकर मंगल ने टीकाराम के पैर पकड़ लिए। टीकाराम ने कुछ नहीं कहा। भोजन के लिये उठ खड़े हुए। मंगल ने सोचा कि बात-की-बात में पिता का कोप शांत कर लिया। बाप-बेटे दोनो एक ही थाली पर जा बैठे। टीकाराम किसी विचार में निमग्न चुपचाप खाना खा रहे थे, और मंगल मन की एक बात कहने का उपयुक्त अवसर ढूँढने में लगा हुआ था। कोई उपाय न देखकर बोला—"दादाजी, गुस्सा तो न करोगे?"

"क्या बेटा?" टीकाराम ने इस तरह से पूछा, जैसे कोई सोते से जाग पड़े।

पिता के स्वर में कठोरता का आभास न पाकर मंगल ने अधिक उत्साह के साथ कहा—"पंडित नवलविहारी ने हम लोगों को आर्यसमाजी कैसे कहा? आप तो जानते हैं कि यह बात झूठ है।"

"क्या मालूम !" टीकाराम ने शांति के साथ उत्तर दिया—"संसार में न-मालूम किस देश में क्या-क्या हो रहा है !"

मंगलदास के मन में यह नोक नहीं चुभी। चहककर बोला—"आपको मालूम है, दादाजी, मैं कविता भी करता हूँ !"

चकित दृष्टि से उसकी ओर देखकर टीकाराम बोले—"निठल्लों को कविता और खिलाफ़त के सिवा और सूझ ही क्या सकता है ? क्यों रे, संसार में क्या तुझसे कुछ भी न बन पड़ेगा ?"

किसी उठते हुए तूफ़ान की आशंका से पास बैठी हुई मंगल की मा ने कहा—'क्यों मंगल, क्या तू उन्हें अच्छी तरह भोजन भी न करने देगा ?" और, ज़रूरी न होने पर भी उसने थाली में और भी पकवान डाल दिया। दूसरी ओर मनोवृत्ति को आकर्षण कर ले जाने का उस बेचारी का उद्देश मंगल की विचार-धारा में बाधा न डाल सका। वह अप्रतिहत होकर बोला—"कमबख़्त आर्यसमाजियों की तो मुझे एक भी बात पसंद नहीं। महज़ बकवाद !"

टीकाराम की आँखों में कुछ संतोष की झलक देखकर मंगलदास को सहारा मिला। बोला—"आप दादाजी, नाहक़ क्रुद्ध हो रहे हैं, मैंने जो कविता बनाई है, उसे सुनकर आप खुश होंगे !" अपने दुलारे लड़के के मुख पर एक मीठी मुस्किराहट देखकर टीकाराम का विषाद कुछ कम हो गया।

लड़का ठीक मौका समझकर झट बोला—"घुटी खोपड़ी, नंगा सर; कर में डंडा, मुँह में टर। यह है आर्यसमाजी की परिभाषा दादाजी।" मंगल इस गूढ़ उक्ति को कहकर हँस पड़ा। उसकी मा भी हँसी। टीकाराम भी हँसी को न रोक सके।

मंगलदास ने सोचा कि पिता का सब कोप शांत हो गया।

भोजन के उपरांत मंगल पिता के पास जा बैठा। टीकाराम लड़के से इधर-उधर की बातें करने लगे। थोड़ी देर में उसकी मा भी भोजन करके आ गई, और उसकी पत्नी चौके का काम-काज करने लगी।

मंगल की आँखों के सामने रामायण-सभा का चित्र फिर खिंच गया। बात कुछ और कर रहा था, हँसी आ गई। इस निष्प्रयोजन हँसी का कारण टीकाराम ने बिना किसी क्षोभ के पूछा। मार्ग निष्कंटक देखकर मंगलदास ने कहा—"मुझे सभावाली बात याद आ गई थी, दादाजी। मैंने चाहे भूल की हो अथवा न की हो, परंतु यह तो आप भी कहेंगे कि नवलबिहारी बड़ा भोंदू है। गले में बड़े-बड़े गजरे डाल जब वह झूमता और बेसुरा चिल्लाता है, तब आफ़त आ जाती है। इसीलिये तो मैंने उस बेवक़ूफ़ बाबूराम के कान में कहा था कि भैंसों की तरह रेंकता है।"

"चुप-चुप।" टीकाराम ने कहा—"यह बक-बक आगे कभी मेरे सामने न करना।"

मंगलदास इससे नहीं रुका। मन्द में बोला—"मैंने यह तो नहीं कहा था कि नवलबिहारी गधे की तरह रेंकता है।"

बहुत सँभालने पर भी टीकाराम क्रोध को न रोक सके। बोले—"निकल जा इस कमरे से।"

मंगलदास चुपचाप पिता के मुँह की तरफ देखने लगा।

टीकाराम अपने ही क्रोध-वेग के कारण थर-थर काँप रहे थे। मा ने कुसमय देखकर कहा—"जा, तो जा। क्यों व्यर्थ में कष्ट देता है।"

अपने को निर्दोष समझकर मंगलदास ने जलती आग में घी-सा डालते हुए कहा—"दादाजी यों ही मुझ पर बिगड़ते हैं, बतलाओ, मैंने कहा क्या है? क्या रामायण-सरीखा मधुर काव्य उस गधे द्वारा गाया जाने योग्य है? जब वह तुलसी की वाणी पर अपना कठोर जबड़ा घुमाता है, तब वह भी भद्दी लगने लगती है।"

टीकाराम ने उच्च स्वर में कहा—"जाता है यहाँ से या जूते लगाकर निकालूँ? रामायण-द्रोही का इस घर में कोई काम नहीं। जा, काला मुँह कर यहाँ से। न कोई काम न धाम। सिवा चबड़-चबड़ के और कुछ करना ही नहीं जानता। मुफ्त का भोजन कर-करके मोटा पड़ रहा है। एक आड़ी सींक भी कभी सीधी नहीं कर सकता। माँग सँवार ली, अच्छे कपड़े पहन लिए, मीठा-मीठा भोजन गड़प लिया, और लगा धर्म की निंदा करने! निकल यहाँ से टुकड़खोर, नहीं तो मारते-

मारते अभी बेदम कर दूँगा।" और, टीकाराम किसी सक्रिय प्रतिरोध के लिये आसन छोड़कर ज़रा-से उठे।

मंगल तिलमिला उठा। उसने अपने पिता के भीतर इतने बड़े तूफ़ान का कभी अंदाज़ नहीं किया था। वहाँ से उठ जाने की इच्छा रखते हुए भी वह न उठ सका। उसकी मा टीकाराम की गति के आड़े आ गई, और मंगल से बोली—"जा, ज़ा, टल जा, अपने कमरे में जाकर सो जा, क्यों यहाँ बैठा-बैठा व्यर्थ की बातें मार रहा है?"

जैसे रोके जाने पर नदी की धार और ज़ोर पकड़ती है, उसी तरह टीकाराम आगे बढ़कर मंगल के सिर पर दो-चार हाथ साफ़ करने के लिये व्यग्र हो उठे।

मंगल ढिठाई के साथ बोला—"मार लीजिए, मैं सिर झुकाए खड़ा हूँ। आपके ही हाथों बदी होगी, तो कौन रोक सकता है।"

टीकाराम जल उठे। अपनी स्त्री को धक्का देकर मंगल के ऊपर झपटने को हुए कि वह उनसे लिपट गई। उसी लिपट-झपट में एक हाथ मंगल के सिर पर जा पड़ने को हुआ कि वह पीछे हट गया। मा ने रोते हुए गले से कहा—"चला जा, यहाँ से चला जा, नहीं तो मैं प्राण दे दूँगी।"

मंगल वहाँ से उठकर चला गया। टीकाराम ने हाँफते हुए चिल्लाकर कहा—"इस पाजी का हमारे घर से काला मुँह करो। एक क्षण भी मुँह नहीं देखना चाहता।" उस रात

टीकाराम को नींद नहीं आई। मंगल की मां भी रात-भर इनके पास बैठी रही।

(५)

मंगलदास जैसे ही अपने शयनागार में पहुँचकर बिस्तरे पर लेटा कि उसकी पत्नी सोमवती काम-काज करके या बंद करके आ गई। यद्यपि उसकी आयु पंद्रह-सोलह वर्ष से अधिक न थी, तथापि वह अपनी ससुराल में विवाह के उपरांत अनेक बार आ चुकी थी। मंगलदास ने अपने विनोद स्वभाव के कारण उसे बहुत ढीठ बना दिया था। परंतु आज का रंग देखकर वह भी चिंताकुल थी।

सोमवती ने पास जाकर धीरे से पूछा—"यह सब क्या बखेड़ा था? आज तो दादाजी बहुत नाराज हो रहे थे।"

"अब तुम भी थोड़ा-सा नाराज हो लो, तो कसर मिट जाय।"

"मैं क्या बावली हूँ?"

"तो क्या दादाजी बावले हैं?"

"इसीलिये तो पूछती हूँ कि बात क्या थी?"

"बात यह है कि मैं बावला हूँ।"

"सीधी तरह बतला दो, नहीं तो दिक करूँगी।"

मंगलदास ने निःश्वास लेकर कहा—"तुम लोगों से अब मेरा भार सहन नहीं होता। देखो न, मुफ्त का खा-खाकर कितनी चर्बी चढ़ा ली है।"

"सो तो फूटी आँखवाले को भी दिखलाई देता है। बात न बनाओ, ठीक बतलाओ।"

"बावन तोले पाव रत्ती ठीक है। निकम्मा लड़का कपूत से कम नहीं होता, और मैं दोनो हूँ। जब तक अपने हाथ-पैर हिलाकर न कमाऊँ, घर से बाहर रहने का हुक्म हो गया है। बाहर जाऊँगा।"

"कहाँ ?"

"विलायत अथवा स्वर्ग—नरक कहीं भी।"

"उल्टी बातें करके जी न दुखाओ। क्या बाँदा में कोई कमाई नहीं कर सकते ? मैं भी चाहती हूँ कि कोई काम करो।"

"एक रोज पहले कहा होता, तो मैं यह कहता कि घर की संपत्ति की रानी तुम बन जाओ, और तुम्हारी मुनीमी मैं करूँ, परंतु......"

"परंतु क्या जी ? घर के राज-पाट से संतोष नहीं हो सकता। कल कहा होता या आज कहा। काम तो करना ही होगा। सुनते-सुनते मेरे भी कान पक गए हैं।"

मंगल चारपाई पर बैठ गया। उत्सुकता और क्षोभ के साथ पछा—"क्या मा भी कुछ कहा करती हैं ?"

सोमवती ने उत्तर दिया—"माजी ने तो कभी कुछ नहीं कहा, परंतु पड़ोस की स्त्रियाँ जब कभी मिलती हैं, तब मुझसे पूछा करती हैं कि तुम्हारे बाबू क्या काम करते हैं, तब मैं चुप हो जाती हूँ।"

"चुप क्यों हो जाती हो ?" मंगलदास ने कहा—"सीधा त्तर दे दिया करो कि भाड़ झोंकते और झख मारते हैं।"

सोमवती मुस्किराती हुई बोली—"यह सब बिना बतलाए ी समझकर तो वे तरह-तरह की बातें किया करती हैं।"

अपनी ठठोली की यह प्रतिध्वनि मंगलदास के चित्त में ड़ गई। मज़ाक़ करनेवाले लोग कभी-कभी मज़ाक़ किया ाना पसंद नहीं करते। मंगलदास ने गंभीरता के साथ हा—"मैं कल ही बाहर जाऊँगा, जिसमें तुम अपनी सखी-हेलियों से कह सको कि वह बलखबुखारा जीतने के लिये अकेले निकल गए हैं। इससे तुम्हें और तुम्हारी सखियों को ब संतोष होगा।"

"यहीं रहकर कुछ काम करो। दादाजी बाहर न जाने देंगे।"

"बाँदा में रहकर केवल एक काम हो सकता है—तुम्हारी आरती सबेरे-शाम उतारा करूँ।"

"न-जाने तुमको क्या हो गया है। जब देखो, तब इसी तरह की बेतुकी बातें करते रहते हो।"

"सो आगे बहुत दिन सुनने को न मिलेंगी। मेरे चले जाने पर तुमको और दादाजी, सबको चैन मिलेगा, और सबसे अधिक हर्ष होगा उस साले नवलविहारी को।"

"उसको नाहक़ गाली देते हो। रामायण-कीर्तन के समय तुमको ऐसी भद्दी बात नहीं कहनी चाहिए थी।"

"सच फ़रमाया हुज़ूर! अब आप मेरी जगह रामायण पढ़ा करिए, और खब रीझिए-रिझाइए।"

"तुम्हारे-जैसा मुँहज़ोर तो संसार में कोई भी न निकलेगा। दादाजी से बातचीत में न जीत पाए, तब मेरे ऊपर चोटें करने लगे।"

मंगलदास ने आह भरकर कहा—"अब अधिक बकझक न करूँगा। आगे या तो कमाऊ पूत कहलाऊँगा, या मुँह न दिखलाऊँगा। यों ही तुमसे दो-एक बातें कहीं, सो तुम्हें पसंद नहीं आईं।"

"मैं तो तुमसे यह पूछ रही थी कि आज यह सब क्यों हुआ है, पर तुम और ही कुछ इधर-उधर की ले उड़े।"

"अब तो सब मालूम हो गया, श्रीमतीजी! कृपा करो और सो जाओ। जितना कह चुका हूँ, उससे अधिक हज़ार सिर पीटने पर भी न जान पाओगी। मैं बाहर जाऊँगा, कमाई करूँगा, और बहुत दिनों बाद लौटूँगा। इससे अधिक ब्रह्मा भी मुझसे मालूम नहीं कर सकते।"

यद्यपि सोमवती ने मंगलदास पर अपने ससुर को शायद ही कभी इतना रोप करते हुए देखा हो, तथापि वह यह जानती थी कि मंगल का जी कैसी भी भारी घटना के कारण देर तक दुखी नहीं रह सकता; और इतनी कहा-सुनी होने के बाद भी वह दिल्लगी कर रहा था, इसलिये किसी तरह की शंका उसके जी में न उठी, और वह अधिक बातचीत न करके सो गई।

(५)

सबेरे मंगलदास गाड़ियों का टाइमटेबिल देखने लगा। टीकाराम नित्य-कृत्य से निबटकर चुपचाप भोजन करने गए। मंगलदास टाइमटेबिलों को पटककर साथ में भोजन के लिये बुलाए जाने की बाट जोहने लगा। जब देर तक कोई न आया, तब मा को पानी दे जाने के लिये पुकारा। उत्तर मिला—"आई बेटा।" घर में हरीराम नाम का एक बूढ़ा कहार बहुत दिनों से नौकर था। मा टीकाराम को खाना खिला रही थी। उसके चौका छोड़ने के पहले ही हरीराम पानी भरकर ले आया। गिलास बढ़ाया। मंगल ने गिलास हाथ में बिना लिए ही कहा—"हरीराम, तुमने जन्म-भर की कमाई में क्या जोड़ा?"

"जोड़ा है, सो क्या तुमको बताऊँगा लल्ला!" बूढ़े हरीराम ने हँसकर कहा—"कहीं खोदकर बहा दिया, तो?"

मंगलदास निष्पंद हो गया। बोला—"पानी से प्यास नहीं बुझेगी, टाइमटेबिल से कुछ खोदकर निकालूँगा। उसमें कोई दोषारोप न कर सकेगा। किसी का खज़ाना न बहेगा। जाओ।"

हरीराम ने घबराकर कहा—"मेरे पास क्या खज़ाना रक्खा है। मेरी तो धन-संपदा तुम्हीं हो। लो, पानी पी लो।"

"अभी नहीं पीना है। रख दो। विलंब से पिऊँगा।"

मंगलदास बोला—"गाड़ियों के जाने का वक्त देख रहा हूँ। महोबा जाऊँगा आज शाम को।"

"लिक्चर-विक्चर देने जा रहे हो क्या?" हरीराम ने पूछा—"पंडितजी वैसे ही नाराज़ हैं। लिक्चर देने अभी न जाओ। जब वह शांत हो जायँ, तब कहीं जाना भैया।"

"वह शायद ही अब प्रसन्न हों। जब कुछ कमाकर लौटूँगा, तब कोई प्रसन्न होगा। शाम की गाड़ी से जाऊँगा।" मंगल ने कहा।

"तो क्या बिना पूछे ही जाते हो?" हरीराम ने पूछा।

"नहीं जी।" मंगल बोला—"हुक्म हुआ है, इसलिये जाता हूँ। अच्छा, अब बक-बक मत करो, जाओ यहाँ से। मुझे न भूख है, न प्यास।"

हरीराम ने कहा—"यह न होगा। मैं यह गिलास खाली न ले जाऊँगा। पानी पीना पड़ेगा।"

इस आग्रह से विचलित न होकर मंगल बोला—"अब क्या घर-भर मेरी उपेक्षा ही करेगा? मैं कहता हूँ, जा यहाँ से। तू अडिग होकर खड़ा है। मैं कहता हूँ, पानी न पिऊँगा; तू कहता है, पीना पड़ेगा।"

नौकर उदास होकर बोला—"मुझसे लल्ला, खफ़ा न होओ। क्या गिलास का पानी फेककर चला जाऊँ? पाँव पड़ता हूँ, पी लो।"

"फेक दे।" मंगल ने कहा।

हरीराम वैसे ही खड़े रहकर बोला—"न फेकूँगा, न यहाँ से जाऊँगा, चाहे मार डालो। पीना ही पड़ेगा पानी।"

कोई उपाय न देखकर गिलास लेने के लिये मंगल ने हाथ बढ़ाया ही था कि उसकी मा आ गई। मंगल ने हाथ खींच लिया।

मा बोली—"भोजन कर लो।"

उसने कहा—"दादाजी ने कर लिया ?"

मा ने ज़रा-सा मुँह फेरकर कहा—"हाँ, कर लिया। उनको कहीं जाने की जल्दी थी, इसलिये अकेले ही थोड़ा-सा खाकर उठ गए हैं। चलो भीतर।"

मंगल बोला—"तुम भी खा लो, और सब खा लें, तब देखा जायगा। तब तक रेलवे-कंपनी की यह किताब पढ़ता हूँ।"

"नहीं, ऐसा न होगा।" मा ने कहा।

मंगल बोला—"सब कुछ होगा। कुछ भी न रुकेगा। ज्यों-का-त्यों होता रहेगा।"

मा बोली—"तेरा-जैसा ज़िद्दी संसार में भी न मिलेगा। चल, उठ।"

"भूख नहीं है मा। एक भी कौर गले के नीचे न उतरेगा। वमन हो जायगा।" मंगल ने बड़ी अरुचि प्रकट करते हुए कहा।

मा ने कातर स्वर में कहा—"तू न खायगा, तो मैं भी न खाऊँगी। कोई न खायगा।"

वह बोला—"कल क्या होगा ? जब मैं यहाँ न रहूँगा, तब क्या चूल्हा भी न परचेगा ?"

मा ने पूछा—"कहाँ जायगा ?"

"जहाँ सींग समायँगे।" मंगल ने उत्तर दिया।

मा एक क्षण बाद बोली—"अच्छा, जहाँ तेरी तबियत चाहे, चले जाना, परंतु इस समय तो अन्न का अनादर मत कर, थाली परोसी रक्खी है।"

मंगल ने कहा—"तो यह पक्की बात है कि भोजन के उपरांत जहाँ मैं चाहूँगा, चला जाऊँगा ? किंतु-परंतु की तो इसमें कोई बात नहीं है ?"

मा ने पीठ पर धीरे से हाथ मारकर कहा—"नहीं है, उठ। चाहे जो करना।"

हरीराम बोला—"खाना न खाओ, तो पानी कम-से-कम जरूर पी लो। गला सूख रहा होगा। बड़ी देर से लिए खड़ा हूँ।" मंगल ने दया की दृष्टि से हरीराम की ओर देखा, परंतु पानी नहीं पिया। मा के साथ रसोई-घर में चला गया।

(६)

भोजन कर चुकने के बाद मंगलदास अपनी बैठक में चला आया। सोमवती बातचीत का अवसर ढूँढ़ने के लिये व्यग्र मालूम होती थी, परंतु उसकी उत्सुकता शांत न हो सकी।

मा ने टीकाराम से अकेले में जाकर कहा—"आज वह कहीं जा रहा है।"

"वह कहीं नहीं जायगा।"

"बहुत उदास जान पड़ता है।"

"कुछ कहता था?"

"कहता था कि बाहर जाकर कुछ कमाई करूँगा। बहू से भी कहता था।"

"उस कामचोर की बात का कोई ख़याल न करो। जायगा, कहीं व्याख्यान फटकारकर लौट आएगा।"

"वह निश्चय चला जायगा। मुझे भान होता है। तुम उसे रोक दो। मुझे नौकरी नहीं कराना है। घर का ही काम-काज देखे-भाले।"

"यह सब मेरे ऊपर दबाव डालने के लिये धमकी है। अब वह बच्चा नहीं रहा, जो उसकी इस तरह की ऐंठ बरदाश्त करता रहूँ। जाना चाहता है, तो जाय, मुझसे कोई वास्ता नहीं।" टीकाराम ने कुपित होकर कहा।

मंगल की मा ने रुख टेढ़ा देखकर चर्चा बंद कर दी, और किसी काम में लग गई। सोचा कि शांत होने पर फिर किसी दूसरे प्रकार से विषय-वार्ता छेड़ी जायगी।

थोड़ी देर में डंडा हाथ में लेकर टीकाराम घर से बाहर चले गए। मंगलदास की बैठक के पास से होकर निकले। परंतु उसकी ओर देखा भी नहीं।

मंगल ने सोचा—ओफ़्, इतनी घृणा ! परंतु ठीक ही है। निकम्मों पर कृपा करता ही कौन है ? देखूँगा।"

एक घड़ी पीछे कुछ कपड़े बग़ल में दबाकर बिना किसी से कहे-सुने मंगलदास कमरे से बाहर निकला। पीछे पौंर के किवाड़ों की कुंडी की खटक सुनाई पड़ी। उस खटक के निरर्थक शब्द का संवाद मंगल ने समझा। ठिठका। पीछे की ओर देखने के लिये गरदन मोड़नी चाही। परंतु किंचित्। तब तक एक डग आगे निकल गया। फिर कुंडी खटकी। मुड़कर देखा, तो पौंर का द्वार आड़ में आ गया था। केवल एक कोमल हाथ की उँगली नज़र पड़ी।

निश्चय किया—'कोई न रोक सकेगा। किसी से न मिलूँगा।" तब सोमवती का बारीक शब्द कर्णगोचर हुआ। "सुने तो जाओ।" परंतु मंगलदास के पैरों ने तेज़ी पकड़ी, और शहर की भड़-भड़ में चुपचाप एक इक्के पर बैठकर स्टेशन पहुँच गया।

(७)

अभी महोबा की ओर गाड़ी जाने में देर थी। मंगल मुसाफ़िरख़ाने में एक भीड़ में छिपकर बैठने की चेष्टा करने लगा। एक जगह थोड़ी देर बैठा, परंतु उकता उठा। टहलने लगा। मुश्किल से घड़ियाँ कटीं, तब टिकट खुलने का समय आया। टिकट लेकर दरवाज़े से प्लैटफ़ार्म पर जाने ही को था कि हरीराम बीच में आ खड़ा हुआ। हाथ पकड़कर उसने

मुसाफ़िरों के बढ़ते हुए ठठ से मंगल को अलग किया। मंगल विस्मित था, कुपित था और संकुचित।

हरीराम बोला—"मालिक, घर लौट चलो, बड़ा कुहराम मचेगा। माजी को कष्ट हो रहा है।"

"तुझको क्या दादाजी ने भेजा है?" मंगल ने पूछा।

हरीराम ने उत्तर दिया—"दादाजी अभी तक घर पर नहीं आए हैं। माजी को मालूम हो गया है।"

"कि मैं सारा घर-बार चुराकर परदेश भागा जा रहा हूँ।" मंगल ने कहा—"माजी ने क्या कहकर तुझको पीछे चिपटाया है। मैं न लौटूँगा। दूर जा रहा हूँ। जाओ घर।"

"माजी ने नहीं भेजा है," हरीराम बड़ी आशा के साथ बोला—"बहूजी ने भेजा है।"

मंगल ने तिनककर कहा—"माजी ने कुछ कहा है या नहीं?"

"वह तो हाथों में सिर लिए बैठी हैं।" हरीराम ने जवाब दिया—"बहूजी ने उनकी हालत खराब देखकर मुझको दौड़ाया है। तेज इक्का लेकर आया हूँ। लौट चलो। उनसे मिलकर फिर भले ही चले आना।"

"और बहूजी ने क्या आदेश किया है हरी?" मंगल ने चिढ़कर पूछा।

"लल्ला, टेढ़ी बातें न करो। सीधे घर चलो। मैं तुम्हें यहाँ से कहीं न जाने दूँगा।" हरीराम ने दृढ़ता के साथ कहा।

मंगल उसकी दृढ़ता देखकर एक क्षण बाद बोला—"मुझे यदि तुम जबरदस्ती इस समय घर ले जाओगे, तो दिन-रात पहरा तो कुछ देते न रहोगे, मुझे कुछ दिनों के लिये जहाँ जाना है, चला ही जाऊँगा। मैं महोबा जा रहा हूँ। मन न लगेगा, तो कल ही लौट आऊँगा। तुम माजी से कह देना।"

इतने में कुछ मुसाफ़िर उसके और हरीराम के बीच में होकर निकले। मंगल मौक़ा पाकर दरवाज़े की ओर खिसका, और मुसाफ़िरों की भीड़ में पहुँच गया।

हरीराम एक क्षण अवाक् खड़ा रहकर, भीड़ को चीरकर मंगल के पास तक पहुँचने की कोशिश करने लगा। उसने देखा कि मंगल फाटक के पास पहुँच गया है, और रोक-थाम क़रीब-क़रीब असंभव हो गई है, तब चिल्लाकर घबराहट के साथ बोला—"अच्छा लल्ला, यह लिए जाओ। ज़रा ठहर जाओ, मैं न रोकूँगा।" और, दूर से उस तक हाथ बढ़ाया।

"क्या है ?" मंगल ने जल्दी से पूछा।

"चिट्ठी !" हरीराम ने उत्तर दिया—"और पोटली में थोड़ा-सा रुपया।"

मंगल ने हाथ बढ़ाकर चिट्ठी और छोटी-सी पोटली ले ली। परंतु हाथ से छुटका दी—या छूट पड़ी हो—हरीराम ने झुककर पोटली उठा ली, और फिर उत्कंठा के साथ फाटक की ओर हाथ बढ़ाया। कहा—"लल्ला, यह रहा जाता है, यह

मेरी तुच्छ भेंट है। परदेश में शायद अटक पड़े। इसे लिए जाओ।"

परंतु हाथ हवा में सूना घूमता रहा। मंगल जल्दी से टिकट कटवाकर फाटक के बाहर हो गया। गाड़ी भक्‌भक्‌ करती हुई प्लैटफ़ार्म पर आई। भीड़-की-भीड़ गाड़ी पर टूटी, और भीड़-की-भीड़ गाड़ी से बाहर के लिये बह-सी उठी।

हरीराम ने मनुष्यों की इस भीड़ में फाटक के पास खड़े-खड़े मंगल की खोज में बहुत आँख पसारी, बहुत गड़ाई, परंतु कुछ न दिखलाई पड़ा। कुछ समय बाद गाड़ी चल दी, और हरीराम पैदल, सिर नीचा किए, धीरे-धीरे घर की ओर चल पड़ा।

(८)

बाँदा-स्टेशन से संध्या के उपरांत गाड़ी चली थी। स्टेशन पर रोशनी थी, परंतु उस रोशनी के पीछे अंधकार था। उस अँधेरे में चलती गाड़ी की खिड़की में मुँह लटकाए मंगल की आँख हरीराम को तलाश कर रही थी, परंतु एक क्षण बाद आँख ने इस क्रिया का त्याग कर दिया, और तेज़ी के साथ पीछे छूटनेवाले जन-स्थानों के वक्र रेखा-समूहों को आँखें बिना किसी लक्ष्य के देखने लगीं। धीरे-धीरे जब सब अदृश्य हो गया, तब मंदिर में होनेवाली संध्या-आरती की कल्पना की ओर दृष्टि गई। परंतु खिड़की से थोड़ा-सा सिर निकालकर टकटकी बाँधने पर भी वह नज़र न पड़ी। तब एक आह

भरकर डिब्बे के भीतर सिर खींच लिया, और आँखें बंद करके मंगलदास दीर्घ संसार के अस्पष्ट विस्तार को अकेला सामने देखने लगा। कोई आश्रय नहीं। कोई आधार-संकेत नहीं। जैसे किसी अनवरत झंझावत में सूखे पत्ते अनायास उड़े चले जाते हैं, बिना किसी इच्छा के दिग्दिगंतर में अंधवेग के साथ बहे चले जाते हैं, ठीक उसी तरह मंगल ने अपने को उस गाड़ी में पाया। आँखें खोलकर डिब्बे में बैठे हुए मुसाफिरों को परिचय के लेन-देन की अभिलाषा से देखने लगा। परंतु चलती हुई गाड़ी में सिवा व्याख्यान-रसिकों के और किसी को संभाषण में आनंद नहीं आता। उस ओर किसी की भी रुचि न देखकर बंडल से पुस्तकें खोलकर पढ़ने के लिये चुनाव करने लगा। परंतु कोई पुस्तक उस समय पसंद न आई। तब हरीराम की दी हुई चिठ्ठी की याद आई, जो कोट की जेब में उसने बाँदा-स्टेशन के फाटक के पास डाल ली थी। सोचा, चिठ्ठी ही पढ़ूँ। फिर एक क्षण में विचार बदल दिया। "अवकाश के समय पढ़ लूँगा।" उसने सोचा—'अभी क्या जल्दी है। वही सब रोना-धोना और भावी विरह-व्यथा का नायिका-भेद रचा होगा।" चिट्ठी न पढ़ी। इसी उलझन में महोबा-स्टेशन आ गया। सवारियाँ उतरने-चढ़ने और धक्का-मुक्की करने लगीं। परंतु मंगलदास न उतरा। उसने बंबई का टिकट ख़रीदा था।

गाड़ी फिर चल दी। आँखों में नींद न थी, तो भी वह लेटना चाहता था। परंतु रेलगाड़ी में अपने सिवा कोई किसी को आराम में नहीं देखना चाहता। जो लेट जाता है, वह यह चाहता है कि बैठनेवाला उठकर खड़ा हो जाय, तो और भी मौज हो जाय। शयन-ग्रस्त मोटे मुसाफ़िरों से हुज्जत करने में बैठे रहने-भर के स्थान को भी संकट में समझकर मंगल कुछ जागता, कुछ ऊँघता, रेलवे-कंपनी को अनिर्वचनीय आशीर्वाद देता हुआ, स्टेशन के बाद स्टेशन पार करता हुआ चला गया। सवेरे के कुछ पहले झाँसी आने पर भीड़ कुछ कम हो गई, परंतु उसे लेटने की इच्छा नहीं रही। अब वह बंबई जानेवाले यात्रियों की टोह लगाने लगा। बंबई में वह किसी को न जानता था, परंतु उसे यह मालूम था कि बंबई बहुत बड़ा शहर है, और अच्छा रोज़गार पहुँचते ही, बात-की-बात में, मिल जायगा; केवल एक दिन के लिये ठहरने का प्रबंध हो जाय, फिर कोई चिंता न रहे।

इसी तरह की बातचीत करने के लिये व्यग्र कई मुसाफ़िर मिले, जो बंबई जा रहे थे। वहाँ बहुत रोज़गार मिलेगा, किसके पास जाकर ठहरेंगे, केवल यही बात निश्चित नहीं थी। इतने बड़े शहर में ठहरने का ठिकाना न हो सकेगा? जब जंगल में आदमी को आश्रय मिल जाता है, तब शहर की बात ही क्या? जो लोग बंबई पहले नहीं गए, वहाँ के स्थाना-

भाव की वास्तविक दशा का उनको यथावत् अनुमान हो भी कैसे सकता था ?

मंगल के मन में लक्ष्य डावाँडोल नहीं हुआ था, क्योंकि स्पष्टता नहीं थी; परंतु आशा-निर्मित कल्पना-चित्रों का रंग बहुत फीका पड़ गया था।

(६)

बंबई पहुँचने पर मंगलदास ने दो-एक दिन किसी रोज़गार की तलाश नहीं की। बाज़ार और इमारतों के देखने में मन बहलाया। लेटने के लिये चार हाथ जगह चौराहों के किनारों पर, समदशावर्ती लोगों के साथ, मिल गई।

फिर रोज़गार की तलाश में निकला। पेट भरने लायक काम तो कई जगह दिखलाई पड़े, परंतु कपड़ों के प्रबंध योग्य अवकाश किसी में न सूझ पड़ा। मन उकता गया। तब पूना गया। बड़े-बड़े राजनीतिक आंदोलनों और विविध प्रकार की हलचल के घर पूना में अधिक प्रश्रय की आशा थी, पर वहाँ भी अधिक रुपएवाली कोई जगह न दिखलाई पड़ी। अपने-सरीखे अनेक युवकों को इसी तरह की ढूँढ़-खोज में संलग्न पाया।

शायद कोई रोजगार मिल भी जाता, परंतु एक जगह टिककर रहने की मन में इस समय गुंजाइश नहीं थी। अभी इतने रुपए पास थे, जिनसे दक्षिण की ओर और भी पर्यटन

हो सकता था, और छोटे-मोटे रोजगार की सफलता-पूर्वक अवहेलना की जा सकती थी।

मदरास, मदुरा, रामेश्वर इत्यादि शोभा-संपन्न, आकर्षक स्थान और मलावार-त्रावंकोर-सदृश विभूतिमय स्थल रोज़गार मिलने से पहले देखने के लिये बाक़ी थे।

उसने सोचा, मलावार और त्रावंकोर देखने के बाद रामेश्वर और तत्पश्चात् मद्रास देखा जाय। इन स्थानों में से कहीं-न कहीं ठौर-ठिकाना हो ही जायगा। एक स्थान से मन उचटकर दूसरे नवीन स्थान की चाह में भटकने लगा। यह मनस्क्रिया केवल रुपयों की कमी से सीमित थी। परंतु मंगल जीभ का चटोर न था, और न विलासी, इसलिये अल्प व्यय से बहुत दिन काम चला ले जाने का मन में विश्वास था। और, इसी ने उसकी पर्यटन-प्रवृत्ति को प्रोत्साहन भी दिया।

अकस्मात् मलावार जानेवाला एक मुसलमान उसे पूना में मिला। मंगल ने पूछा—"मलावार बहुत बड़ा नगर है ?"

उसने टूटी-फूटी हिंदी में उत्तर दिया—"हाँ, बड़ा है। क्या जाओगे ?"

"चलूँगा। रोजगार कैसा है ?"

"रोज़गार तो साधारण है, पर चहल-पहल बहुत है।"

"ख़िलाफ़त-आंदोलन का क्या हाल है ?"

उस व्यक्ति ने बिना एक क्षण के लिये दाएँ-बाएँ आँख

भाव की वास्तविक दशा का उनको यथावत् अनुमान हो भी कैसे सकता था ?

मंगल के मन में लक्ष्य डावाँडोल नहीं हुआ था, क्योंकि स्पष्टता नहीं थी; परंतु आशा-निर्मित कल्पना-चित्रों का रंग बहुत फीका पड़ गया था।

(६)

बंबई पहुँचने पर मंगलदास ने दो-एक दिन किसी रोजगार की तलाश नहीं की। बाजार और इमारतों के देखने में मन बहलाया। लेटने के लिये चार हाथ जगह चौराहों के किनारों पर, समदृशावर्ती लोगों के साथ, मिल गई।

फिर रोजगार की तलाश में निकला। पेट भरने लायक काम तो कई जगह दिखलाई पड़े, परंतु कपड़ों के प्रबंध योग्य अवकाश किसी में न सूझ पड़ा। मन उकता गया। तब पूना गया। बड़े-बड़े राजनीतिक आंदोलनों और विविध प्रकार की हलचल के घर पूना में अधिक प्रश्रय की आशा थी, पर वहाँ भी अधिक रुपएवाली कोई जगह न दिखलाई पड़ी। अपने-सरीखे अनेक युवकों को इसी तरह की ढूँढ़-खोज में संलग्न पाया।

शायद कोई रोजगार मिल भी जाता, परंतु एक जगह टिककर रहने की मन में इस समय गुंजाइश नहीं थी। अभी इतने रुपए पास थे, जिनसे दक्षिण की ओर और भी पर्यटन

हो सकता था, और छोटे-मोटे रोज़गार की सफलता-पूर्वक अवहेलना की जा सकती थी।

मदरास, मदुरा, रामेश्वर इत्यादि शोभा-संपन्न, आकर्षक स्थान और मलावार-त्रावंकोर सदृश विभूतिमय स्थल रोज़गार मिलने से पहले देखने के लिये बाक़ी थे।

उसने सोचा, मलावार और त्रावंकोर देखने के बाद रामेश्वर और तत्पश्चात् मद्रास देखा जाय। इन स्थानों में से कहीं न कहीं ठौर-ठिकाना हो ही जायगा। एक स्थान से मन उचटकर दूसरे नवीन स्थान की चाह में भटकने लगा। यह मनस्क्रिया केवल रुपयों की कमी से सीमित थी। परंतु मंगल जीभ का चटोर न था, और न विलासी, इसलिये अल्प व्यय से बहुत दिन काम चला ले जाने का मन में विश्वास था। और, इसी ने उसकी पर्यटन-प्रवृत्ति को प्रोत्साहन भी दिया।

अकस्मात् मलावार जानेवाला एक मुसलमान उसे पूना में मिला। मंगल ने पूछा—"मलावार बहुत बड़ा नगर है ?"

उसने टूटी-फूटी हिंदी में उत्तर दिया—"हाँ, बड़ा है। क्या जाओगे ?"

"चलूँगा। रोज़गार कैसा है ?"

"रोज़गार तो साधारण है, पर चहल-पहल बहुत है।"

"ख़िलाफ़त-आंदोलन का क्या हाल है ?"

उस व्यक्ति ने बिना एक क्षण के लिये दाएँ-बाएँ आँख

भाषा समझ में नहीं आती थी। जब कभी कोई मुसलमान वक्ता उर्दू का टेढ़ा-मेढ़ा प्रयोग करता था, तब बातें कुछ समझ में आ जाती थीं। इससे व्याख्यान देने की इच्छा कुंठित और अवरुद्ध हो-होकर उत्कट हो गई। परंतु चेष्टा करने पर भी व्याख्यान देने का अवसर हाथ न आया। स्वतंत्र यत्न से कोई रोज़गार मिला नहीं—ख़िलाफ़त-आंदोलन के किसी स्थानीय नेता द्वारा रोटी का सहारा ढूँढ़ना उसकी स्वाभिमानी प्रकृति के लिये नीच प्रतीत हुआ।

उन्हीं दिनों एक बड़ी मसजिद में किसी साधारण या असाधारण कारण को लेकर एक बड़ा हजूम इकट्ठा हुआ। उसमें रहमतुल्ला और मंगल भी शामिल हुए। सारी भीड़ में उत्तेजना की बिजली दौड़ रही थी। एक ऐसी सनसनी थी, जिसके गर्भ में अज्ञात घटनाएँ खलबली मचा रही थीं। आँखों में विचित्र उत्तेजना थी, शरीर के अवयवों में आश्चर्य-जनक गुदगुदी। जन-समूह का कंठरव निरंतर और निरंकुश आवर्त कर रहा था। इतने में एक व्यक्ति ने एक ऊँचे स्थान से चिल्लाकर अपनी बोली में कुछ कहा। सारी उपस्थित जनता शांत हो गई। सद्योगत घोर कल-कल की केवल झाईं-मात्र-सी कहीं-कहीं थोड़ी-थोड़ी सुनाई पड़ती थी। वह भी एक क्षण में लीन हो गई।

खड़े हुए और इधर-उधर चलने-फिरनेवाले मनुष्य तुरंत पंक्तियाँ बाँधकर घुटने टेकने लगे। नमाज़ होने लगी।

मंगलदास अपने साथी के पास किं-कर्तव्य-विमूढ़-सा खड़ा रहकर इधर-उधर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा। इतने में ऊँचे स्थान पर खड़े हुए व्यक्ति ने कहा—"यह कौन है ?"

मंगल के उत्तर देने के पूर्व ही रहमतुल्ला ने धीरे से उससे कहा—"घुटने टेक लो, और जैसे हम लोग करें; वैसा करते जाओ; वरना तुरंत बाहर जाओ, नहीं तो मारे जाओगे।" मंगल का चेहरा लाल हो गया। आगे-पीछे, चारों ओर भारी भीड़ देखकर निरुपाय-सा हो गया। कुछ भी स्थिर न करके एक क्षण पश्चात् अपने साथी की बग़ल में घुटने टेककर उसके कान में कहा—"मैं यह सब कुछ नहीं जानता। विलक्षण-सा मालूम होता है।"

"चुप, चुप," रहमतुल्ला बोला—"नमाज़ शुरू हो गई है। जैसा हम लोग करते जायँ, वैसा करते जाओ। यहाँ बहुत लोग ऐसे हैं, जो नमाज़ नहीं जानते हैं, परंतु जैसा और लोगों को करते देखते हैं, वैसी ही नक़ल उतारते जाते हैं।"

इस पर मंगल ने कुछ नहीं कहा। अपने साथी को जैसा कुछ करते देखा, करता गया। ऊँचे स्थान से जिस व्यक्ति ने आरंभ में मंगल के खड़े रहने पर निषेधात्मक या आक्षेपात्मक बात कही थी। वह नियम-पूर्वक अपनी रीति का निर्वाह कर रहा था, परंतु बीच-बीच में तीक्ष्ण दृष्टि से उस ओर भी एक क्षण के लिये देख लेता था, जहाँ मंगलदास अनुकरण कर रहा था।

नमाज़ खत्म होने के बाद वह व्यक्ति तुरंत मंगलदास के पास आया। बोला—"तुम कौन हो ?"

मंगल ने बिना सकपकाए हुए उत्तर दिया—"उत्तर की ओर का एक हिंदू, परंतु ख़िलाफ़त का हिमायती।"

रहमतुल्ला ने बीच में पड़कर कहा—"हमारा दोस्त और साथ देनेवाला।"

वह बोला—"अभी देखता हूँ।"

(११)

थोड़ी ही देर में मंगलदास के चारो ओर मसजिद की भीड़ में एक भीड़ जमा हो गई।

रहमतुल्ला मंगल के पास ही ढाल-सा बनकर खड़ा था। बोला—"यह आदमी हमारे साथ मसजिद में आया है। यह भी ख़िलाफ़ती है, कोई जासूस नहीं।"

"मारो, मारो, जासूस है, क़ाफ़िर है।" कुछ आवाज़ें पीछे से आईं।

मंगल इतने अजनबियों के बीच में घबरा गया। परंतु बिना किसी अभ्यर्थना के बोला—"मारना है, तो मार दो, लेकिन मैंने किया क्या है ?"

रहमतुल्ला खिसियाकर बोला—"कैसे कोई मारेगा ? मसजिद के भीतर क्या किसी ख़ुदा के बंदे पर कोई हाथ उठा सकता है ? उसने भी नमाज़ पढ़ी है, मालूम है ?"

पेशइमाम ने कहा—"ठहरो, ठहरो, शोर मत करो। मैंने

भी इसको बिला शक नमाज़ पढ़ते देखा है। लड़के, तुम नमाज़ पढ़ना जानते हो ?"

"नहीं।" मंगल ने आँख से आँख मिलाकर उत्तर दिया।

"ज़रूर जानता है। मेरे पास इसने नमाज़ पढ़ी है।" रहमतुल्ला बोला।

"मैंने भी देखा है।"

"मैंने भी।"

"और मैंने भी।"

कई कंठों से एक ही बात निकली। पेशइमाम मंगल के ज़रा और नज़दीक आया। बोला—"तुम कहते हो कि नमाज़ नहीं जानता, फिर क्या कर रहे थे ?"

"नमाज़ कर रहा था," मंगल ने उत्तर दिया—"परंतु मैं यह नहीं जानता कि नमाज़ में क्या होता है, और क्या पढ़ा जाता है।"

एक क्षण सोचकर पेशइमाम ने भीड़ से कहा—"सिर्फ़ कलाम पाक सुनाने की देर है। लड़का नेक है। हमारी बदी नहीं करेगा। मगर दीन में बिना लाए काम न चलेगा।"
"अल्लाहो अकबर !" ऊँचे स्वर में कहकर भीड़ ने उत्तर दिया।

मंगलदास इस प्रस्ताव को समझ गया। उसमें कोई गूढ़ता थी भी नहीं। कई विचार मन में उठे, और सबों ने प्रकट होने के लिये एक साथ प्रतिद्वंद्विता की, परंतु मुँह से

निकला—"मैं हिंदू-मुसलमान सबको एक सा समझता हूँ। सब धर्म एक-से हैं। सबका एक ही ईश्वर है।"

"तब मुसलमान हो जाओ।" रहमतुल्ला ने पुचकारकर कहा—"हम लोग एक बड़े काम के लिये अभी निकल पड़नेवाले हैं। ठहर नहीं सकते।" फिर एक क्षण बाद पेशइमाम से बोला—"यदि यह मुसलमान न हो, तो मेरे घर पर इसको जाने दीजिए। यह हमारे दुश्मनों को कोई खबर न देगा।"

"मुसलमानों के सिवा हमारे सब दुश्मन हैं।" भीड़ से कई आवाज़ों की कड़क निकली।

"तब और कोई उपाय नहीं है।" पेशइमाम ने कहा—"दीन में लाना पड़ेगा, वरना हमारा काम खराब हो जायगा।"

मंगल का गला सूख गया। चेहरा उतर गया। सैकड़ों निर्णय-पूर्ण, निश्चय-पूर्ण आँखें उसकी ओर टकटकी लगाए देख रही थीं। उनमें कोई स्नेह, सहानुभूति या अनुकंपा न थी। केवल एक रहमतुल्ला था, जिसकी आँख के एक कोने में निर्बल प्रतिवाद का कुछ प्रकाश और एक कोने में उस एकांत हिंदू-युवक के लिये कुछ दया थी। परंतु सहधर्मी मलाबारियों की उत्तेजना और पुकारें उसके लिये बहुत बलिष्ठ बैठीं। हाथ पकड़कर मंगल से बोला—"हो जाओ, दीन पाक पर ईमान लानेवाले बन जाओ। हम लोग मरने-मारने के लिये संसार में निकलनेवाले हैं। हमारा साथ दो, तब जानें तुम खिलाफ़त के सच्चे हिमायती हो।" रहमतुल्ला अपनी बातें टूटी-फूटी

हिंदी में करता था, परंतु उनका सार यही था, जिसे मंगल अच्छी तरह समझ रहा था।

उष्ण श्वासें, जो उष्ण शब्दों के साथ लौ की तरह उसके चारो ओर छिटक रही थीं, उनसे उसका गला और भी सूख रहा था। रहमतुल्ला के संबोधन के प्रत्युत्तर में केवल उसके मुँह से निकला—"प्यास लगी है, जाऊँ।"

"अभी यहाँ पानी पीने को मिलेगा।" पेशइमाम बोला, और उसने पानी लाने के लिये इशारा किया। कई आदमी दौड़े। परंतु पानी लानेवालों में सबसे पहला रहमतुल्ला था। बोला—"पियो। प्यास बुझाओ। ठंडा पानी है।"

मंगल निष्पंद खड़ा रहा। आँखों के सामने तारे-से छूटने लगे।

पेशइमाम बोला—"पियो और कलाम पढ़ो।"

मंगल कुछ न बोला।

रहमतुल्ला ने कहा—"ज़बरदस्ती नहीं, ख़ुशी से पियो।" तब पेशइमाम ने मंगल के हाथ पकड़कर उसके मुँह में पानी डाल दिया। भीड़ ने चिल्लाकर कहा—"अल्लाहो अकबर!"

पेशइमाम ने कलमा पढ़ने के लिये कहा, और ख़ुद कलमा पढ़ा। मंगल चुपचाप था। कुछ बड़बड़ा-भर रहा था। रहमतुल्ला ने कहा—"बस, हो गया, हो गया।" अनेक लोगों ने कहा—"हो गया, हो गया।" पेशइमाम बोला—"सब

लोग इसे गले से लगाओ। इसके बाद काम शुरू करो।"

सबने निष्पंद मंगल को गले से लगाया।

(१२)

इसके बाद मंगलदास की चोटी और जनेऊ अलग कर दिए गए। नाम रक्खा गया मंगलखाँ उर्फ़ पीर मुहम्मद।

तब पेशइमाम कुछ मलाबारियों के साथ उसे मसजिद की एक कोठरी में ले गया। कोठरी बंदूकों, तलवारों, कटारों और भालों से खचाखच भरी हुई थी।

पेशइमाम ने कहा—"इसी वक़्त हम लोग अँगरेज़ों पर हमला करनेवाले हैं। आज ही यहाँ से इनका टीनपाट बँधवाते हैं। कल से सारे हिंदुस्थान में खिलाफ़त हो जायगी। देखो, आज ही कितने शहीद होते हैं। लड़ना जानते हो ?"

मंगल ने बिना किसी उत्तेजना के कहा—"हाँ, जानता हूँ ?"

"लड़ोगे ?"

"लड़ूँगा और मरूँगा। जीने की बिलकुल इच्छा नहीं। परंतु मैंने अहिंसा का व्रत लिया था। मरने की क़सम खाई थी, मारने की नहीं।"

पेशइमाम ने हँसकर मंगल की पीठ पर थपकी दी। बोला—"हम लोग अहिंसा नहीं मानते। कोई भी नहीं मानता। तुम्हारे भीतर से उस भूत को हमने आज कलमे से निकालकर भगा दिया है। तलवार हाथ में पकड़ो, और पहले मारो, तब मरो। भागना हरगिज़ नहीं।"

"भागना नहीं सीखा है।" मंगल ने कहा—"मरूँगा और मारूँगा।"

मंगल ने एक तलवार अपने हाथ में ले ली। एक रहमतुल्ला ने भी ले ली। फिर किसी ने बंदूक़, किसी ने भाला और किसी ने कुछ उठा लिया। बड़ा हुल्लड़ हुआ।

रहमतुल्ला इस गोल-माल में से मंगल को एक ओर ले जाकर बोला—"तुम्हें कुछ रंज तो नहीं? ज़बरदस्ती तो की नहीं गई?"

मंगल ने निर्मम भाव के साथ कर्कश स्वर में उत्तर दिया—"नहीं, कुछ भी नहीं। मरूँगा और मारूँगा। मरूँगा, इसमें कोई संदेह नहीं।"

रहमतुल्ला ने स्नेह के साथ कहा—"मेरे साथ एक उपकार कर सकते हो?"

"क्या?"

"मैं लड़ाई पर जा रहा हूँ। जहाद है। अँगरेज़ों को मारकर मर जाऊँगा। पर मेरे बच्चे हैं। उन्हें तुमने देखा है। वे मुझे बहुत प्यारे हैं, केवल उन्हीं की चिंता है।"

"तब क्या करूँ? मुझे भी कुछ प्यारा था, पर मैं चुप हूँ, और चुपचाप ही मरना चाहता हूँ। केवल यह प्रार्थना करता हूँ कि मेरी मौत को कोई जान न पावे।"

"मैं तुमसे केवल इतना चाहता हूँ कि मेरे घर चले जाओ। यहाँ से उत्तर की ओर पाँच कोस नेचलगढ़ी नाम का एक

गाँव है। वहाँ उन्हें पहुँचाकर फिर मर जाओ। मुझे कोई शिकायत न होगी।"

क्षण-भर कुछ सोचने के बाद मंगल के होठों पर मुस्किराहट की एक रेखा दिखलाई दी, जैसे किसी सूखे पेड़ की छोटी-सी डाली में थोड़े-से हरे पल्लव। फिर गंभीर होकर बोला—"मुझे तुम्हारे प्रति कृतज्ञ होने की कोई आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती। परंतु तुम्हारे नन्हे-नन्हे सलोने बालक संकट में जान पड़ते हैं। इसलिये तुम्हारे घर जाता हूँ। जब मैंने मरने की ही ठान ली है, तब आज नहीं, तो कल सही, रोक कौन सकता है?"

इसके बाद ही इस हजूम की मुठभेड़ कुछ पुलिसवालों से वहीं हो गई। मार-काट हुई। खून बहा। फिर पागल कुत्तों की तरह वह हजूम जहाँ-तहाँ टूट पड़ा।

(१२)

मलाबार के मोपला-उपद्रव का समाचार बाँदा में भी पहुँचा। उस दिन लोग-बाग नवलबिहारी की रामायण-सभा में कीर्तन के लिये इकट्ठे हुए। नवलबिहारी थे, टीकाराम और दस-बारह सदस्य और।

जब से मंगल बाँदा से बेपता हुआ, तब से टीकाराम को बाहर आते-जाते बहुत कम देखा गया। रामायण-कीर्तन में कर्तव्य-वश और कीर्तन के अंत में हृदय के भीतर हृदय की प्रार्थना करने के लिये पहुँच जाया करते थे, परंतु

किसी वाद-विवाद में भाग नहीं लेते थे। महोबा के कुछ मित्रों को मंगल की खोज लगाने के लिये पत्र भेजे। कोई संतोष-जनक उत्तर न मिला। झाँसी और अनेक स्थानों को भी पत्र लिखे, परंतु मंगल का समाचार न मिला। अपने ज्योतिष से भी काम लिया। उससे उत्तर प्राप्त हुआ, 'लड़का मिलेगा, कुछ विलंब से।' उनका विश्वास ज्योतिष में था। उसी का अवलंब लिए, आशा लगाए जीवित थे।

नवलविहारी ने अपने सहज, प्रखर स्वर और खलबली पैदा करनेवाली जानकारी के ज्ञान-दंभ के साथ कहा—"बहुत कहा, नहीं माने। अब देखो, मोपलों ने सालों का तोबड़ा तंग कर दिया है।"

सब लोग इस समाचार को किसी-न-किसी रूप में सुनकर कीर्तन-स्थान में आए थे, परंतु तो भी सभापतिजी ने किसी विशेष विकट, बीभत्स ख़बर सुनने की लालसा से नवल-विहारी का मुँह ताकने लगे।

नवलविहारी उन लोगों में से न थे, जो सहज ही किसी बात को एक ही क्षण में बतला देते हैं। बोले—"बड़े मार्के की लड़ाई हुई है। मार्शल-लां जारी हो गया है। फ़ौजी क़ानून! जानते हैं आप, जब पेर उखड़ने को होते हैं, तभी सरकार फ़ौजी क़ानून जारी करती है।"

टीकाराम ने धीरे से पूछा—"वह स्थान कहाँ है, जहाँ यह सब फ़साद हुआ है?"

"यहाँ से तो सैकड़ों कोस पर है।"

नवलविहारी ने उत्तर दिया—"परंतु आग जब एक बार कहीं लग जाती है, तब बिना किसी पक्षपात के चारो ओर फैलती है। सुना है, मोपलों ने छावनी, खज़ाने, सब एक पल-भर में लूट लिए।"

टीकाराम शांति की एक साँस लेकर चुप रहे।

प्रस्तुत सदस्यों में एक ढली उमर के हेतसिंह ठाकुर भी बैठे थे, और एक अधपकी अवस्था का पीताराम अहीर।

हेतसिंह ने कहा—"सुना है, मोपलों ने हिंदुओं को भी बहुत तहस-नहस किया है। अँगरेज़ों का कुछ नहीं बिगाड़ पाए।"

"सब झूठ है। सरकारी ख़बर देनेवाले मुहकमे की बदमाशी है," नवलविहारी ने कहा—"जर्मनी की लड़ाई में रोज़ इसी तरह की बेपेंदी की अफ़वाहें सुनाई जाया करती थीं। आख़िर में सब निर्मूल निकलीं।"

इसके बाद जर्मनी की लड़ाई का ज़िक्र चला गया, और जर्मनों के शौर्य की चर्चा होने लगी।

नवलविहारी ने कहा—"जर्मनी वेद की क़द्र करता है, इसलिये इतना आगे निकल गया है। वायुयान इत्यादि उसने सब हमारे ऋषियों की पुस्तकों से निकाले हैं। जर्मन लोग संस्कृत बहुत अच्छी जानते हैं।"

पीताराम ने बिना कोई संदेह किए हुए कहा—"यह सब

बिलकुल सही बात है। मैंने कई जगह पढ़ी है। परंतु वहाँ के राजा के धर्म का कोई ठीक नहीं। उसने मुसलमानों की मसजिद में नमाज़ पढ़ी थी।"

हेतसिंह बोले—"यह बात मुसलमानी अखबारों की उड़ाई हुई प्रतीत होती है।"

"और, यदि सच्चो भी हो," नवलविहारी ने कौशल के साथ कहा—"तो राजनीति में साम, दाम, दंड, भेद, सभी कुछ चलता है। उधर नमाज़ पढ़ आए, इधर गिर्जा में इबादत कर ली। काम बन गया, और धर्म रह गया। बात ही क्या हुई!"

इस चतुराई पर सब लोग हँसने लगे।

कीर्तन का समय आ गया था, इसलिये और चर्चा बंद होकर रामायण-गायन आरंभ हो गया।

सबकी सब चिंताएँ कीर्तन की लय में डूब गईं। केवल एक टीकाराम वहाँ थे, जिन्हें बीच-बीच में नवलविहारी का प्रखर स्वर उस समय मंगलदास का विशेष स्मरण करा रहा था।

(१४)

कीर्तन और आरती की समाप्ति पर पीताराम बोले—"क्यों साहब, जिन हिंदुओं को मलाबार में जबरदस्ती बेधर्म कर डाला गया है, उनका क्या होगा?"

नवलविहारी ने कहा—"और क्या होगा? वे हिंदुओं के किस काम के रहे? उनके भाग्य में यही बदा होगा।"

"यह बात जी को खटकती है।" हेतराम ने सोचकर कहा—

"मुसलमानी अखबारों में ही यदि यह बात छपी होती, तो शंका का स्थान हो सकता था, परंतु हिंदी-अखबारों में भी छपी है।"

टीकाराम बड़ी देर से चुपचाप बैठे थे। यह सोचकर कि लोग उन्हें चुप देखकर बार-बार उनकी ओर निगाह डाल रहे हैं, बिना किसी अभिप्राय के प्रस्तुत चर्चा में प्रवेश करते हुए बोले—"विधर्मी को धर्म में वापस नहीं लिया जा सकता। 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।' संसार की गति विचित्र है।"

नवलविहारी बोले—"मैंने एक अखबार में पढ़ा है कि हज़ारों-लाखों की तादाद में हिंदू मुसलमान बनाए गए हैं। हिंदू समाज ने इसका संगठित रूप से कोई प्रतिवाद नहीं किया।"

"तभी तो पादरी लोग हिंदुओं को ईसाई बनाते हैं, जिसमें सरकार के मददगारों की तादाद बढ़ती जाय। स्वराज बहुत दूर मालूम होता है।"

टीकाराम ने कहा—"जब उसका नियत समय आवेगा, तब न ख़िलाफ़त कुछ कर सकेगी, और न सरकार। परंतु हिंदुओं में एका तो है ही नहीं।"

नवलविहारी बोले—"अजी, हमने तो यह सुना है कि मलाबार में बहुत-से हिंदू राज़ी-ख़ुशी मुसलमान हो गए हैं।"

"ग़लत है पंडितजी।" पीताराम ने कहा—"हिंदू इच्छा-पूर्वक कभी अपना धर्म नहीं छोड़ते।"

हेतसिंह ने कहा—"परंतु धर्म-रक्षण के साधन भी तो कम नजर आते हैं। अपने ही यहाँ देखो, धनुष-यज्ञ धूम-धाम के साथ करने के लिये इतनी कोशिश करते हैं, पर बहुत-से लोग मीन-मेख ही निकालते रहते हैं।"

"चंदा बड़ी मुश्किल से वसूल होता है।" नवलविहारी ने कहा—"यदि सब-का-सब चंदा वसूल हो जाय, तो स्टेज पर आन-बान के साथ लीला की जाय।"

टीकाराम ने धीरे से कहा—"हमने तो अपना चंदा दे दिया।"

"मैंने भी।" पीताराम बोले।

"मैं अपना दे दूँगा।" हेतसिंह ने कहा—"यहाँ के बनिए, क्षमा कीजिएगा, भरोसे के आदमी नहीं। चंदा लिखने के समय बड़ी-बड़ी रक़में लिख डालते हैं, लेकिन देने के समय चीं बोल जाती है।"

एक वैश्य सदस्य भी वहाँ बैठा था। नाम था लखपत। जरा गरम होकर बोला—"किस वैश्य ने कब ऐसा किया? जितना महाजनी बर्ताव वैश्य लोग करते हैं, उतना कोई भी नहीं कर सकता।"

हेतसिंह ने कहा—"अमरचंद महेश्वरी ने लिखकर फिर अंत में नाहीं कर दी, और किस-किसका नाम लूँ?"

लखपत निरुत्तर नहीं हुआ। अभिमान के साथ बोला—

"हमारे किसी अग्रवाल भाई का नाम लीजिए। महेश्वरी ने न दिया होगा। इसके लिये सब वैश्यों को कैसे बदनाम किया जा सकता है?"

"अजी, सब उँगली एक-सी थोड़े ही होती हैं। परंतु वैश्य तो भाई साहब महेश्वरी भी होते हैं।"

"और सब अहीर एक होते हैं?" लखपत ने उग्र स्वर में पूछा।

पीताराम ने शांति के साथ उत्तर दिया—"हाँ, इस ख़याल से कि वे सब क्षत्रिय हैं, फिर एक जाति की उपजातियाँ तो सनातन काल से चली आई हैं।"

हेतसिंह ज़रा मुस्किराकर बोले—"भगवान् कृष्ण के वंश के यादव लोग भले ही क्षत्रिय हों, परंतु सब अहीर तो, पीताराम, क्षत्रिय हैं नहीं। वास्तविक क्षत्रिय तो हमी लोग हैं।"

पीताराम का चेहरा तमक उठा। परतु संयत भाव के साथ बोला—"जब से लड़ने का पेशा छोड़ दिया, और गो-पालन का व्यवसाय हाथ में लिया, तब से अहीर लोग अपनी आदि उत्पत्ति को भूल गए, परंतु शास्त्रों में इसका पूरा प्रमाण है कि अहीर लोग क्षत्रिय हैं।"

"भाई, कलिकाल है, और नई तालीम का प्रभाव है।" हेतसिंह ने साँस छोड़कर कहा—"सब क्षत्रिय बनते चले जा रहे हैं। कायस्थ, कुर्मी, लोधी, काछी, कोली, चमार, अग्रवाल

बनिए, सब क्षत्रिय बनकर ही दम लेंगे। हिंदुओं के राज्य-काल में ऐसा होना असंभव था।"

नवलविहारी मध्यस्थ-से बनते हुए बोले—"अग्रवाल तो वैश्य हैं। वर्ण में हैं। उन्हें क्षत्रिय बनने की क्या आवश्यकता ?"

"झूठ है।" लखपत ने प्रबलता के साथ, परंतु आवाज़ को बिना उठाए हुए कहा।

हेतसिंह हँसकर बोले—"अरे लाला, पहले देखो तो, तुम्हारे नई रोशनी के लड़के क्या कहते हैं ?"

नवलविहारी ने बीच में पड़ते हुए, विद्वत्ता और उदारता प्रदर्शित करते हुए कहा—"इन सब बातों में क्या रक्खा है। भगवान् के दरबार में सब एक हैं। सबको अपना भाई समझना चाहिए। और, जो लोग अपने को क्षत्रिय कहते हैं, वे शास्त्र का प्रमाण भी दे सकते हैं।"

टीकाराम बोले—"यह तो बिलकुल ठीक है। 'हरि को भजै, सो हरि का होई।' सबको समदर्शी होना चाहिए, परंतु एक जाति का आदमी ज़बरदस्ती दूसरी जाति का नहीं बन सकता।"

नवलविहारी बोले—"जाने भी दो। अब यह बतलाओ कि जिन्होंने अभी तक चंदा नहीं दिया, वे महाशय कब तक दे देंगे ? जल्दी मिल जाय, तो लीला शीघ्र आरंभ कर दी जाय।"

लखपत ने केवल नवलविहारी की ओर देखते हुए पूछा—"ठाकुर साहब, अपना चंदा कब तक देंगे?"

"जब कहो, तब।" हेतसिंह ने खरेपन के साथ उत्तर दिया—"रघुकुल रीति सदा चलि आई; प्राण जाहिं, पै वचन न जाई।"

पीताराम बोला—"महाराज तुलसीदासजी का वचन बिलकुल सत्य है, परंतु आप कोई दिन मुक़र्रर कर दीजिए, नहीं तो कोरी बातों में क्या रक्खा है?"

"मेरा वचन कोरी बात है, क्यों जी?" हेतसिंह ने तेज़ होकर कहा—"यदि कोरी बात समझते हो, तो यही सही।"

"मैं तो जानता था।" लखपत ने नीचे-ही-नीचे मुस्किराते हुए कहा।

"लाला, बहुत न इतराओ।" हेतसिंह बोले—"धन का बहुत घमंड अच्छा नहीं होता।"

लखपत के नेत्रों में विजय की मुस्किराहट थी, परंतु उसने नम्रता के साथ हाथ जोड़कर कहा—"ख़ैर, जाने दीजिए। जब आपकी इच्छा हो, तब दे दीजिएगा। मैंने तो वैसे ही कहा। मैं आपसे लड़ना थोड़े ही चाहता हूँ।"

हेतसिंह चुप हो गए। कुछ कहना चाहते थे, न कह सके।

नवलविहारी ने बात बढ़ने की आशंका और अपनी सभा की कुशल-कामना से चिंतित होकर कहा—'अरे भाई,

संसार का ऐसे ही दौरदौरा रहता है। चंदा आ जायगा, तब शीघ्र लीला प्रारंभ कर देंगे। आने से रुकेगा नहीं। प्रभु की इच्छा होगी, तो लीला हो ही जायगी।"

(१५)

रहमतुल्ला को मसजिद में छोड़कर मंगल उसके घर चला गया, और जाकर एक कोने में पड़ रहा। थोड़ी देर में शहर-भर में हल्ले-गुल्ले का तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। बंदूकों की आवाज़ें भी सुनाई पड़ने लगीं। सड़कों पर आदमी सिर पर पैर रखकर भागने लगे। रहमतुल्ला की औरत ने मलयालम-भाषा में मंगल से इस शोर का कारण पूछा, जिसका उत्तर मंगल ने हिंदी में दिया। वह बेचारी कुछ भी न समझी।

तब छ-सात बरस की आयु का एक बच्चा मंगल के पास आया। बालक खिले हुए गुलाब की तरह स्वस्थ और सुंदर था। चिंतित होकर बालक ने मलयालम में वही बात मंगल से पूछी।

इतने में दरवाज़े के सामने भीड़-भाड़ और उसमें पुलिस को दौड़-धूप करते हुए मंगल ने देखा।

बच्चे को बिना कोई उत्तर दिए, परंतु उसकी ओर देखते हुए मंगल ने सोचा—"मार डालूँ और मर जाऊँ ? किसको मारूँ ? भीड़ में हिंदू और मुसलमान दोनों हैं। किसी ने व्यक्तिगत रूप से मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा। पुलिसवाले पर तलवार चलाऊँ, तो वह भी निरपराध दिखाई देता है। तब

सिवा उस रहमतुल्ला और पेशइमाम के और कोई मार डालने लायक़ नहीं जान पड़ता।"

इतने में बालक ने अधिक चिंता के साथ वही प्रश्न पूछा। भाषा समझ में नहीं आई, परंतु उस बालक के चेहरे पर चिंता की जो छाप थी, वह स्पष्ट दिखलाई पड़ती थी।

मंगल सोचता गया—"पेशइमाम ने क्या किया? रहमतुल्ला ने ही तो पानी पिलाया है। अगर मिल जाय, तो अकेले उसी को मारकर फिर अपने पेट में इस तलवार को भोंक लूँ। परंतु अब रहमतुल्ला नहीं मिलेगा। अथवा मिलेगा, तो न-जाने कब। परंतु जब मिलेगा, तब उसी को मारकर मर जाऊँगा। अब किस चीज़ के लिये जिऊँगा? कौन बैठा है?" और, मंगल ने गहरी साँस ली।

वह बालक मंगल के और पास आ गया। घुटना टेककर एक हाथ उसने मंगल के कंधे पर रक्खा और दूसरा ठोढ़ी पर, और बहुत चेष्टा के साथ स्पष्ट भाषा में अपने 'अब्बा' की बाबत पूछने लगा।

मंगल ने कहा—"ठहरो।"

फिर सोचा—"मैं अब हिंदू नहीं हूँ। मुसलमान हूँ। मुसलमान! ठीक जैसे टर्की इत्यादि देशों में मुसलमान होते हैं। ख़लीफ़ा अब सचमुच हमारा सब कुछ है। ऐसी जल्दी सब बंधन टूट गया! थोड़ा-सा पानी पी लेने से मेरा हिंदुत्व चला गया! अवश्य चला गया है। क्या कोई हिंदू अब

मुझे हिंदू कहेगा ? और मैं क्या मुसलमान हूँ ? अब इसमें संदेह ही क्या ? परंतु यह निस्संदेह है कि मैं जीना नहीं चाहता।"

बालक अपने अनेक प्रश्नों का जवाब न पाकर रोने लगा।

मंगल बोला—"क्या पूछते हो ?"

रोते हुए बालक ने कहा—"अब्बा ?"

तब मंगल को खयाल आया कि रहमतुल्ला ने अपने बच्चों को किसी गाँव में भेजने के लिये प्रार्थना की थी। ध्यान-पूर्वक उसकी ओर देखकर मंगल ने कहा—"तुम्हारा अब्बा गया। अब नहीं आवेगा।"

और, भाषा को हाथों के संकेत से उस बालक के हृदय पर बिठलाने की चेष्टा करने लगा। उसकी मा, जो परदे से देख और सुन रही थी, समझ गई। उसे रहमतुल्ला के विचारों का कुछ-कुछ पता था, और वह यह जानती थी कि बहुत शीघ्र कोई बड़ा भारी परिवर्तन उत्पन्न करनेवाली घटना होनेवाली है। और, उसे यह विश्वास था कि उक्त घटना और उसकी भविष्यत् संवृद्धि का संबंध है। परंतु इतनी भीड़-भाड़ और पुलिस की दौड़-धूप से वह कुछ घबरा रही थी।

उसने इशारे से लड़के को अपने पास बुला लिया, और खुला हुआ दरवाजा बंद करा लिया।

मंगल सोचने लगा—"मरूँगा, परंतु किसी को मारकर या किसी को भी न मारकर। साधन का निश्चय पीछे

करूँगा। पहले इन बच्चों का प्रबंध करूँ। परंतु ये बच्चे उसी रहमतुल्ला के हैं, जिसके छल से मुझे नमाज़ में शरीक होना पड़ा, और फिर कलमे का पानी पीना पड़ा। और, यदि मैं वहाँ जाता ही नहीं या लौट आता? रहमतुल्ला का इसमें क्या अपराध? परंतु है इसमें साज़िश उसकी ज़रूर। अब मेरा संबंध उस धर्म से नहीं रहा, जिसमें मेरी मा ने मुझे जन्म दिया था। मा! मा! ओह! अब क्या संसार तुम्हें भी मुझे अपना न कहने देगा? परंतु मुझे जीवित तो रहना ही नहीं। वैसे भी सबका त्याग कर आया हूँ। तब इन बच्चों का जिस सुरक्षित स्थान में जाना चाहें, भेजकर अपने को समाप्त कर दूँगा। हिंदू-समाज की ममता पर अब मेरा कोई हक़ नहीं रहा। एक क्षण में इतना बड़ा परिवर्तन हो गया! मैं वे ही सब कपड़े पहने हूँ, वे ही हाड़-मास हैं, वे ही सब श्वासें हैं, परंतु परिवर्तन हो गया, घोर और संपूर्ण! मसजिद में गया। नमाज़ पढ़ी। कलमे का पानी मुसलमान के हाथ से पिया। कुछ शेष नहीं रहा।"

(१६)

वह रात कठिनता से कटी। बराबर मार-काट, धूम-धड़ाका और शोर-गुल होता रहा। सवेरा होने पर मंगल ने मलाबार की गलियों को सुनसान पाया। इधर-उधर मकान धधक रहे थे। कभी-कभी मोपलों के लोहू-लुहान और धूल-धूसरित झुंड जय की पुकार लगाते निकल पड़ते थे। मंगल

ने सोचा, सचमुच मोपलों का राज्य हो गया। परंतु विश्वास नहीं हुआ।

सवेरा हो जाने पर भी रहमतुल्ला के न आने पर उसकी पत्नी व्याकुल हो उठी। परंतु वह रोई-धोई नहीं। जो बात वह मंगल को अपनी भाषा में न समझा सकी थी, वह संकेत से समझा दी, और घर-गिरस्ती का जरूरी सामान लेकर अपने बच्चों के साथ, मंगल की संरक्षता में, नेचलगद्दी-नामक गाँव की ओर चल दी। जब तक मलाबार-नगर से एकाध मील बाहर न निकल गई, इधर-उधर किसी की खोज में आँख डालती गई। उत्सुक बालकों का ध्यान जब कभी पेड़ों, पत्तियों और चराचर दृश्यों से बँटकर मा की ओर जाता था, और वे पूछते थे—"अब्बा कहाँ हैं ?" तब वह "नेचलगद्दी" कहती थी। स्त्री के निरानंद, किंतु निर्भय उत्तर और बालकों के सरस, सरल प्रश्न पर अन्यमनस्क मंगल उस ओर देख-देखकर किसी भ्रम से जाग-सा पड़ता था।

निदान सूर्य के काफ़ी चढ़ आने पर नेचलगद्दी-नामक गाँव आया। बहुत बड़ा न था। हिंदू-मुसलमान, दोनो की आबादी थी।

यहाँ भी कुछ मकान जल रहे थे। कुछ लाशें भी पड़ी हुई थीं। मुसलमान इधर-उधर दिखलाई पड़ते थे। हिंदू कोई नज़र न आता था। रहमतुल्ला के मकान पर पहुँचते ही कुछ मोपले आ गए। उनमें से एक ने पूछा—"रहमतुल्ला कहाँ है ?"

स्त्री ने गर्व के साथ उत्तर दिया—"अपना काम कर रहे हैं।"

मंगल की ओर इंगित करके उसने कहा—"यह कौन है? क़ाफ़िर मालूम होता है।"

क़ाफ़िर का शब्द सुनकर मंगल चौंक पड़ा। क्योंकि शेष बातचीत मलायलम में हुई थी। इसलिये वह समझ न पाया। स्त्री ने विना किसी संकोच के कहा—"बंबई का आदमी है। मेरे पति का मित्र। हम लोगों को यहाँ तक पहुँचाने आया है।"

"परंतु है कौन? क़ाफ़िर या मुसलमीन?"

मंगल से न रहा गया। "क्या मतलब है? क्या चाहते हो?"

मोपला टूटी-फूटी हिंदी बोल सकता था। बोला—"कौन हो? क़ाफ़िर या मुसलमीन?"

"कोई सही। तुम्हें क्या प्रयोजन?" मंगल ने कहा।

"अब मुसलमीन और ख़िलाफ़त का राज्य हो गया है। सब क़ाफ़िर मारे जायँगे। बहुत-से मार डाले गए। शेष को आजकल में समाप्त किया जायगा। तुम कौन हो?" वह बोला।

मंगल ने दृढ़ता से कहा—"न क़ाफ़िर न मुसलमीन—अथवा दोनो। फिर?"

"जब मुसलमीन नहीं हो, तब क़ाफ़िर ज़रूर हो।" मोपला

ने कड़ककर कहा, और वह मंगल पर आक्रमण करने को सन्नद्ध मालूम हुआ।

मंगल तलवार लिए था। उसने तुरंत खींच ली। बोला—"मुझे भी बदला लेना है। रहमतुल्ला न सही, तू ही सही।"

परंतु दोनो की भिड़ंत होने के पहले ही रहमतुल्ला की पत्नी बीच में आ गई। उसका बड़ा बालक भी उसके बिलकुल पास ही था।

स्त्री ने आँखें फाड़कर शोर के साथ कहा—"यदि इसका एक बाल भी बाँका हुआ, तो तुम्हारी खाल नोच डालूँगी। मेरा पति मलाबार में धर्म-युद्ध कर रहा है, और तुम उसके मित्र को, जो यहाँ उसी के कहने से हम लोगों को घर पहुँचाने आया है, लूटना चाहते हो? आओ, देखें. कौन आता है। मुझे पहले मारो, औरत को मारो।"

इस चुनौती को स्वीकार करने की कोई अभिलाषा उन मोपलों में न दिखलाई पड़ी। कुछ कानाफूसी करने लगे, कुछ फुसकारने लगे। कुछ पीछे खिसके। मंगल पैंतरे पर डटा रहा। स्त्री ने उपयुक्त अवसर ताड़कर मंगल को पकड़ा, और अपने घर में कर लिया। फिर कोई मोपला नहीं आया।

मंगल ने कई बार यह प्रश्न दुहराया कि "मोपले हिंदुओं को क्यों मारते हैं?"

स्त्री ने बड़ी मुश्किल से मंगल को समझाया कि "वे हमारे शत्रु हैं।"

"तब मैं भी एक हूँ।" और तुरंत एक साँस लेकर बोला—"नहीं हूँ—अब नहीं हूँ। मुसलमान हूँ—या कुछ-न-कुछ हो गया हूँ।" फिर कुछ क्षण बाद उससे इशारे से पूछा—"तो क्या ये सब लाशें हिंदुओं की हैं?"

उसने कहा—"होंगी।"

इसके बाद वह स्त्री अपने और अपने बच्चों के लिये भोजन बनाने की चिंता में व्यस्त हो गई। मंगल एक कोने में बैठकर विचार-मग्न हो गया।

थोड़ी देर में रहमतुल्ला की पत्नी एक थाली में पका-पकाया चावल परोसकर लाई। मंगल ने इनकार कर दिया। कहा—"मुझे ज्वर हो आया है, भूख नहीं। जब भूख होगी, तब देखा जायगा। चावल लाओ। भूख लगने पर बना लूँगा।"

उसने रसोई का सामान और बर्तन दे दिए। ज्वर था, और भूख न थी। परंतु थोड़ी देर में मंगल ने एक कुएँ पर जाकर बर्तनों को खूब मल-मलकर धोया, अपने हाथ से पानी भरकर लाया, और रसोई बनाई। थाली परोसकर देवता को भोग लगाने के लिये जैसे ही उसने आँखें मींचीं, चौंक पड़ा, हिल उठा। सोचने लगा—"मेरा चढ़ाया भोग देवता ग्रहण कैसे करेंगे। मैं मुसलमान हूँ। मुझे देवता के

स्मरण करने का क्या अधिकार ? अब मैं देवताओं का नहीं हूँ और न देवता मेरे हैं।"

एक आह खींचकर भोजन की थाली की ओर देखा, बिलकुल भूख न जान पड़ी। मन में कहने लगा—"मुसलमान लोग भोजन करने के पहले जो कहते और करते होंगे, वही मैं भी किया करूँगा। परंतु देवता का स्मरण करना तो मा ने सिखलाया था, इसे कौन उस ममता के साथ बतलावेगा ?" मा का स्मरण होते ही आँखों से टप-टप आँसू झर उठे।

"मैं मा का नहीं, और मा मेरी नहीं ! यह असंभव है। देवताओं से चाहे संबंध टूट जाय, परंतु मा से नाता कैसे टूटेगा ? कोई नमाज़, कोई मसजिद और कोई कलमा उस संबंध को न तोड़ सकेगा।" सोचते-सोचते प्रज्वलित आँखों के आँसू सूख गए। थाली एक ओर कर दी। प्रकट रूप से बोला—"मा को नहीं छोड़ सकता।" फिर तुरंत सहमकर मन में बोला—"परंतु इस जन्म में अब मा नहीं मिल सकती।" मंगल के शरीर में दाह होने लगा। तालू सूखने लगा, जीभ लथड़ाने लगी। सिर घूमने लगा। उससे बैठा न गया। सारे शरीर में ऐसी कँपकँपी लगी, जैसे जूड़ी का ज्वर वेग के साथ आ रहा हो। मंगल वहीं भूमि पर एक कपड़ा ओढ़कर लेट गया।

(१७)

थोड़ी देर में उसकी यह हालत रहमतुल्ला की बीबी

को भी मालूम हुई। बहुत चेष्टा करने पर भी जब वह यथार्थ कारण न जान सकी, तब गाँव के एक बुड्ढे मुसलमान को बुलाया, जो हिंदी बोल सकता था, और रहमतुल्ला का मिलने-जुलनेवाला था।

रहमतुल्ला की बीबी ने मंगल के विषय में उक्त बुड्ढे को, जितना हाल उसे मालूम था, बतलाया। बुड्ढे ने पास जाकर मंगल को बुलाया। वह इस समय सो गया था। रहमतुल्ला की बीबी निकट ही, कुछ क़दम के फ़ासले पर, खड़ी थी। उसका बड़ा लड़का बिलकुल पास सटा खड़ा था। बुड्ढे ने मंगल का सिर टटोलकर अपनी भाषा में कहा—"इसे बुखार है।"

रहमतुल्ला की बीबी बोली—"कुछ औषधि करना चाहिए।"

"पंसारी हिंदू था, उसकी दूकान जला दी गई, और वह मार डाला गया।"

"फिर इसका क्या होगा ? क्या ज्वर तीव्र है ?"

"हाँ, तेज़ है।"

इतने में मंगल की आँख खुली। सूखी ज़बान से बोला—"पानी।"

बुड्ढे ने रहमतुल्ला की बीबी से पानी मँगवाया। उसने लाकर बुड्ढे के हाथ में कटोरी दे दी, और बुड्ढे ने मंगल की ओर बढ़ाई। मंगल बैठ गया।

आँख और चेहरा ज्वर की गरमी के कारण लाल थे, और

होंठ सूखे, पपड़ाए हुए। मंगल ने पानी की कटोरी न लेकर कहा—"तुम कौन ?"

बुड्ढे ने स्नेह के साथ कहा—"यह सब पीछे पूछना। तुम्हारी तबियत खराब है। प्यासे हो। जल ग्रहण करो।"

हिंदी में बात सुनकर मंगल को आंशिक शांति मिली। बोला—"रहमतुल्ला कहाँ है ?"

"धर्म और खिलाफ़त के काम पर।"

"अर्थात् हिंदुओं की जान-माल समाप्त करने में ?"

"नहीं, अँगरेजों की भी। अब आज-कल में हम लोगों का फिर राज्य होनेवाला है।"

मंगल ने टूटते हुए स्वर में कहा—"मुझे थोड़ा विष दे दो, तो बड़ी कृपा होगी।"

बुड्ढे ने तोबा करके कहा—"दिल मत तोड़ो। अच्छे हो जाने पर तुम भी बड़े-बड़े काम कर सकोगे। तुम्हारी जीभ लड़खड़ा रही है, पी लो थोड़ा-सा पानी।"

मंगल ने काँपते हुए गले से पूछा—"आप मुसलमान हैं ?"

"और नहीं तो क्या मैं हिंदू हूँ ? आप शायद—"

मंगल ने उत्तर दिया—"मैं हिंदू था, और मुसलमान हूँ या नहीं, इसके विषय में कुछ नहीं कह सकता।"

"परंतु आप रहमतुल्ला के मित्र हैं, और यह नेकबख्त औरत आपकी तारीफ़ करती है। इसलिये आप कोई भी हों,

को भी मालूम हुई। बहुत चेष्टा करने पर भी जब वह यथार्थ कारण न जान सकी, तब गाँव के एक बुड्ढे मुसलमान को बुलाया, जो हिंदी बोल सकता था, और रहमतुल्ला का मिलने-जुलनेवाला था।

रहमतुल्ला की बीबी ने मंगल के विषय में उक्त बुड्ढे को, जितना हाल उसे मालूम था, बतलाया। बुड्ढे ने पास जाकर मंगल को बुलाया। वह इस समय सो गया था। रहमतुल्ला की बीबी निकट ही, कुछ क़दम के फ़ासले पर, खड़ी थी। उसका बड़ा लड़का बिलकुल पास सटा खड़ा था। बुड्ढे ने मंगल का सिर टटोलकर अपनी भाषा में कहा—"इसे बुखार है।"

रहमतुल्ला की बीबी बोली—"कुछ ओषधि करना चाहिए।"

"पंसारी हिंदू था, उसकी दूकान जला दी गई, और वह मार डाला गया।"

"फिर इसका क्या होगा? क्या ज्वर तीव्र है?"

"हाँ, तेज़ है।"

इतने में मंगल की आँख खुली। सूखी ज़बान से बोला—"पानी।"

बुड्ढे ने रहमतुल्ला की बीबी से पानी मँगवाया। उसने लाकर बुड्ढे के हाथ में कटोरी दे दी, और बुड्ढे ने मंगल की ओर बढ़ाई। मंगल बैठ गया।

आँख और चेहरा ज्वर की गरमी के कारण लाल थे, और

होंठ सूखे, पपड़ाए हुए। मंगल ने पानी की कटोरी न लेकर कहा—"तुम कौन ?"

बुड्ढे ने स्नेह के साथ कहा—"यह सब पीछे पूछना। तुम्हारी तबियत खराब है। प्यासे हो। जल ग्रहण करो।"

हिंदी में बात सुनकर मंगल को आंशिक शांति मिली। बोला—"रहमतुल्ला कहाँ है ?"

"धर्म और ख़िलाफ़त के काम पर।"

"अर्थात् हिंदुओं की जान-माल समाप्त करने में ?"

"नहीं, अँगरेज़ों की भी। अब आज-कल में हम लोगों का फिर राज्य होनेवाला है।"

मंगल ने टूटते हुए स्वर में कहा—"मुझे थोड़ा विष दे दो, तो बड़ी कृपा होगी।"

बुड्ढे ने तोबा करके कहा—"दिल मत तोड़ो। अच्छे हो जाने पर तुम भी बड़े-बड़े काम कर सकोगे। तुम्हारी जीभ लड़खड़ा रही है, पी लो थोड़ा-सा पानी।"

मंगल ने काँपते हुए गले से पूछा—"आप मुसलमान हैं ?"

"और नहीं तो क्या मैं हिंदू हूँ ? आप शायद—"

मंगल ने उत्तर दिया—"मैं हिंदू था, और मुसलमान हूँ या नहीं, इसके विषय में कुछ नहीं कह सकता।"

"परंतु आप रहमतुल्ला के मित्र हैं, और यह नेकबख़्त औरत आपकी तारीफ़ करती है। इसलिये आप कोई भी हों,

मुझे इससे कोई बहस नहीं। हम लोगों को तो अपने गाँव के हिंदुओं से रंज है। बाहरवालों से कोई घित नहीं। लो, अब पानी पीना हो, तो पी लो, वरना नीचे रक्खे देता हूँ, क्योंकि देर से लिए-लिए हाथ काँपने लगा है।"

रहमतुल्ला के लड़के ने आग्रह के साथ टूटी-फूटी हिंदी में कहा—"पी लो, पी लो।"

मंगल आँखें बंद करके लेट गया। उसने पानी नहीं पिया। बुड्ढे ने कटोरी नीचे रख दी। अपनी भाषा में रहमतुल्ला की बीबी से बोला—"क़ाफ़िर है। हम लोगों के हाथ का छुआ पानी न पिएगा। हिंदू कोई इस समय यहाँ आएगा नहीं। जो दो-एक छिपे-लुके यहाँ बचे हैं, उन्हें थोड़ी देर में या तो अपने फ़िरक़े में कर लिया जायगा, या ख़त्म कर दिया जायगा।"

स्त्री ने कहा—"फ़िरक़े में न आवें, तो उन्हें ख़त्म ही करना पड़ेगा।"

रहमतुल्ला मलाबार के बलवाइयों में शामिल होने के कारण नेचलगद्दी के लोगों के हृदयों में नेतृत्व बिना किए ही नेता सदृश आदर पा गया था। उसकी स्त्री भी अप्रत्यक्ष रूप से अपने पति के इस महत्त्व की अधिकारिणी हो गई थी। बुड्ढे ने अपने प्रस्ताव के साथ उस स्त्री की सहानुभूति देखकर संतोष प्रकट किया। बोला—"वह प्रश्न तो अभी हल

हो जायगा। परंतु इस लड़के के लिये क्या किया जाय? यदि यह पानी न पिएगा, तो इसकी और खराब हालत हो जायगी।"

इतने में कुछ मुसल्लमान नौजवानों का एक हुल्लड़ बुड्ढे को ढूँढ़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा। रहमतुल्ला की बीवी एक ओर हो गई।

नवागतुकों में से एक ने कहा—"नहीं मानते हैं। अब खत्म न कर दें?"

"यही करना होगा।" बुड्ढे ने कहा—"इन लोगों ने हमें हमेशा तंग किया है।"

उनमें से एक ने पूछा—"और यह कौन पड़ा है? क्या रहमतुल्ला आ गए?"

बुड्ढे ने उत्तर दिया—"नहीं, एक हिंदू है। पर ठीक-ठीक नहीं बतलाता। मेरे हाथ का छुआ पानी नहीं पिया, इसलिये कह सकता हूँ कि मुसलमान नहीं है।"

"तब मारो क़ाफ़िर को।" हुल्लड़ ने चिल्लाकर कहा।

रहमतुल्ला का लड़का सिर ऊँचा करके निर्भीकता के साथ बोला—"क्यों? मारने न देंगे।"

"मारो, मारो।" हुल्लड़ ने आवेश के साथ कहा, और वे लोग मंगल की ओर बढ़े।

बच्चा बीच में खड़ा था, और एक बुड्ढा एक ओर था। इसलिये उन लोगों ने एकाएक वार नहीं किया।

मंगल कराहकर बैठ गया। अकंपित स्वर में बोला—"हाँ, मारो, मार डालो। मैं निस्संदेह हिंदू हूँ।"

"हाँ, जरूर मारेंगे" नवागंतुकों में से एक ने कड़ककर कहा, और जोर से लाठी तानी।

"नहीं मार सकोगे।" कठोरतर कड़क के साथ रहमतुल्ला की बीवी बोली, और उसने पीछे से उस व्यक्ति की लाठी पकड़ ली।

बच्चा रोने लगा। रोते-रोते बोला—"नहीं मार सकोगे।"

बुड्ढे ने भी कहा—"ठहरो, ठहरो। मुसलमान के घर के भीतर वध नहीं हो सकता। फिर वह बीमार है।"

पर्दा छोड़कर रहमतुल्ला की बीवी बीच में आ गई। बोली—"देखूँ, किसकी हिम्मत है, जो इस लड़के को मारे? पहले मुझे मारो। फिर मेरे बच्चों को क़त्ल करो। तब इस ग़रीब को मार सकोगे।"

मंगल भाषा नहीं समझ सका। परंतु भाव समझना असंभव न था।

हुल्लड़वाले सकपकाकर रह गए। बुड्ढे ने उपयुक्त अवसर समझकर कहा—"सब लोग यहाँ से बाहर चलो। जो काम करने का है, उसे करो। यह व्यक्ति रहमतुल्ला का मेहमान है, इसे मत छुओ। चलो।"

रहमतुल्ला की बीवी के बीच में आ पड़ने के कारण हुल्लड़ को जो क्षोभ हुआ था, वह एक क्षण में ग़ायब हो गया,

और वे लोग बुड्ढे के साथ वहाँ से शोर-गुल करते हुए चले गए।

उन लोगों के चले जाने पर कुछ समय के लिये वहाँ सन्नाटा-सा हो गया। बालक का रुदन बंद हो गया था। प्रेम के साथ मंगल के सिर पर हाथ रखकर बोला—"पी लो, पी लो।"

मंगल प्यासा तो पहले से था ही, इस भावोत्तेजना और विचार-संघर्ष के कारण अधिक तप्त और थकित हो गया। बच्चे के अनुनय को स्वीकार कर उसने पानी की कटोरी उठाकर पी ली। जब उतने पानी से प्यास शांत न हुई, तब और पानी मँगाकर पिया।

इसके बाद वह पड़ रहा। पानी पी लेने से ज्वर कम नहीं हुआ। ज्यों-त्यों करके दिन कटा, तो रात पहाड़-सी मालूम होने लगी। आधी रात के बाद बड़ी मुश्किल से आँख झपी। सपने में देखा कि संध्या-का समय है। बाँदा में मंदिर के भीतर आरती हो रही है। शंख-झालर बज रहे हैं। प्रकाश और स्वरों के समूह में उसने मा को देखा। बोली—"बेटा, दर्शन करके घर चलो, तुम्हारे लिये आज बहुत बढ़िया पकवान बनाए हैं।"

(१८)

अभी सवेरा नहीं हुआ था, परंतु मंगल की आँख खुल गई। बार-बार उस स्वप्न को देखने के लिये आँखें मूँदीं,

परंतु फिर न दिखलाई पड़ा। उसके स्थान पर कभी बंबई के दृश्य, कभी पूना के और कभी मलाबार की घटनाएँ दिखलाई पड़ीं। रहमतुल्ला और मसजिद की नमाज़, पेशईमाम और पानी का कटोरा, ये दृश्य भी, इच्छा न करने पर भी, आँखों के सामने फिरते रहे। प्रयास-पूर्वक माता, पिता, हरीराम और सोमवती के कल्पना-चित्र निर्माण किए। ज्वर या मनोवेदना से चित्त को हटाए रखने के लिये घर पर घटी हुई अतीत घटनाओं को स्मरण करने लगा।

मन में कहा—"नवलविहारी का उस दिन व्यर्थ उपहास किया। उसी पाप का यह सब फल है। ओफ़!" और निःश्वास लेकर कुछ क्षण निश्चेष्ट-सा रहा। फिर जिस तरह घर से बाहर निकल पड़ा था, सोचने लगा। एक-एक घटना क्रम से याद आने लगी। अकस्मात् उसके मुँह से निकल पड़ा—"हरीराम ने चलते समय स्टेशन पर एक चिट्ठी दी थी। अभी तक नहीं पढ़ी।" उठकर अपनी एक पोटली में कुछ ढूँढ़ने लगा, परंतु उस समय अँधेरा था। चिट्ठी मिल जाने पर भी उसे पढ़ न सका।

जिस समय सूर्य की प्रकाश-रश्मियाँ अंधकार के अंतिम समूह को छिन्न-भिन्न कर रही थीं, उसी समय मंगल आँखें गड़ा-गड़ाकर चिट्ठी पढ़ रहा था। सोमवती की थी। उसमें लिखा था—

"प्राणनाथ,

मैं नहीं जानती थी कि ऐसी आसानी के साथ रूठ जाओगे। मैंने कुछ नहीं कहा था, तो भी आप बुरा मान गए। मुझे ढीठ आपने ही तो बनाया है। पर आगे के लिये प्रण करती हूँ कि कभी जी दुखानेवाली बात न कहूँगी। जाते समय एक बार मुड़कर भी न देखा। ऐसा आपने पहले कभी न किया था। मैं यदि स्वतंत्र होती, तो बाहर निकलकर आपका हाथ पकड़ लेती, और फिर मेरी और आपकी यह हालत न होती। जिस समय मैंने आपसे जाने के लिये कहा था, आपने मुस्किराकर बातें की थीं, परंतु जाते समय चेहरे पर आनंद न था। भौंहें तनी थीं। नेत्र खिंचे और मस्तक पर दो-तीन शिकनें थीं। मैं फिर भीतर जाकर, दोनो हाथों में सिर लेकर बैठ गई। मेरे कारण ही आपको यह सब व्यथा हुई है। मुझे भी जो कुछ व्यथा है, यदि पंख होते, तो दुःख-कहानी कहकर लौट आती। बिना दर्शनों के नरक-यातना भुगत रही हूँ। क्या आप मुझे क्षमा नहीं करेंगे? मैं आपके मंदिर की पुजारिन हूँ। आपके कृपा-कटाक्ष की भिखारिणी। पुजापे में दो आँसू चरणों पर भेंट हैं। यदि हृदय में कुछ दया हो, तो हरीराम के साथ तुरंत लौट आइए। बहुत लाज तोड़कर हरीराम के हाथ यह चिट्ठा भेजी है। माजी भी बहुत विकल हैं। अकेले में बैठकर सिसक रही हैं। आपके लिये उन्होंने बहुत अच्छे पकवान बनाए थे। आपने नहीं खाए। वह भी न

खायँगी। आप न लौटेंगे, तो उनकी क्या गति होगी ? दादा-जी अभी लौटकर नहीं आए हैं। आते ही न-जाने उनका क्या हाल होगा। और बहुत-कुछ लिखना चाहती हूँ, परंतु आप कहीं दूर न निकल जायँ, इसलिये इस चिट्ठी को यहीं समाप्त करती हूँ।

भिखारिणी सोमवती।"

एक बार पत्र पढ़ चुकने के बाद काफ़ी प्रकाश हो गया। मंगल ने कई बार उस पत्र को पढ़ा, और फिर पोटली में बाँधकर रख लिया। बैठकर सोचने लगा।

इतने में रहमतुल्ला की बीबी उसका हाल पूछने के लिये आई। उसे रोती निगाह से देखने लगा। वह ज़रा डरी। आँखों में पागलों-जैसा भाव था।

मन में बोला—"यदि रहमतुल्ला को पाऊँ, तो अभी मार डालूँ। उसी ने मेरा सर्व-नाश किया।"

स्त्री ने इशारे में तबियत का हाल पूछा।

मंगल ने खिसियाए हुए स्वर में कहा—"यहाँ से जाओ।" और उसके चले जाने के लिये हाथ का संकेत किया।

वह चली गई, परंतु रुष्ट नहीं जान पड़ती थी।

(१६)

पं० नवलविहारी की मंडली के सदस्यों को चंदा दे डालने की कोई बड़ी जल्दी अनुभव नहीं हो रही थी। हेतसिंह ने जितने का वचन दिया था, उसे सहज ही दे सकते थे।

परंतु एक सहवर्गी ने उनके ऊपर कटाक्ष किया था, और उनकी देनदारी की योग्यता पर शंका उठाई थी, इसलिये उन्होंने भी थोड़ी देर के लिये अपना हाथ खींच लिया। जल्दी दे डालते, तो उक्त सदस्य इधर-उधर कहता फिरता कि कैसी चोट रही, आखिर रुपया देना ही पड़ा।

सभा में बात पड़ने के एकाध दिन पीछे ही एक दिन हेतसिंह किसी कार्य-वश पीताराम के मुहल्ले में होकर उसके मकान के सामने से निकले। पीताराम चारपाई पर बैठा हुआ अपने कुछ सजातीयों के साथ बातचीत कर रहा था। जो लोग उसके साथ वहाँ बैठे थे, हेतसिंह को पहचानते थे। हेतसिंह को देखकर पीताराम के सजातीय राम-राम करने के लिये खड़े होने को हुए कि पीताराम ने इशारे से मना कर दिया। सब जहाँ-के-तहाँ बैठे रहे। हेतसिंह ज़रा दूर थे, परंतु उन्होंने देख लिया। जी जल उठा। जब वह बहुत निकट आ गए, तब पीताराम ने साधारण मुस्किराहट के साथ कहा— "राम-राम ठाकुर साहब, आओ, आओ, तमाखू पिए जाओ।" पीताराम के साथियों ने कुछ अधिक आदर के साथ अभिवादन किया। हेतसिंह ने गली में खड़े-खड़े कहा—"काम से जा रहा हूँ, बैठने का समय नहीं है।" एक डग आगे बढ़ाया। फिर तुरंत सोचा कि कोई गड़नेवाली बात नहीं कह पाई। बोले—"बैठूँगा भी, तो क्या यहाँ किसी के सिर पर? जितना बोझ इस समय चारपाई के ऊपर है, क्या वह उसे चकनाचूर

कर डालने के लिये काफ़ी नहीं ?" और आगे बढ़े। पीता-राम ने समझ लिया कि चारपाई छोड़कर खड़े-खड़े प्रणाम न करने के अपराध में यह कटूक्ति सुननी पड़ रही है। वैसे बात अधिक खटकनेवाली न थी, परंतु पीताराम के चुभ गई। चिढ़कर बोला—"न बैठना चाहो, तो मैं पकड़ता भी नहीं। परंतु 'इस चारपाई पर हमारे और तुम्हारे-सरीखे दो और बैठ जायँ, तो इसका एक रेशा भी नहीं टूट सकता।" हेतसिंह खड़े हो गए। "हमारे और तुम्हारे" सामूहिक शब्द अखर गए। वहीं खड़े होकर कहने लगे—"भाई, यहाँ न बैठने का एक कारण और है। मालूम नहीं, किस युग के खटमल उसमें भरे होंगे।" अपने इस वार के गौरव पर उनके होठों पर तीखी मुस्किराहट आई, जो पीताराम के कलेजे के पार हो गई। खटमल! और युगों के! अर्थात् बाप-दादों के जमाने से चारपाई में गंदगी भरी चली आती है!

प्रसन्न-चित्त जाते हुए हेतसिंह से ज़रा कड़क के साथ पीताराम ने कहा—"ठाकुर साहब, तुम्हारे घर ने युगों से ऐसी चारपाई के भी दर्शन न किए होंगे।" और सोचा कि यह वाक्य हेतसिंह को खाक कर देगा, परंतु वह अपने वचन-बाण की विजय पर कुपित अभिमान की हँसी हँसते हुए वहाँ से शीघ्र चल दिए, और पीताराम का वज्राघात खाली गया।

तब पीताराम ने अपने रुद्ध कोप का बाँध वहाँ बैठे हुए लोगों के सामने खोलकर साफ़ कर दिया। बोला—

"इन ठाकुरों की ऐंठ को देखो। इतने तो रीते हैं, और उस पर यह अकड़! हम लोगों में और इनमें क्या अंतर है? केवल यही न कि हमारी जाति परिश्रम की रोटी खाती है, और ये लोग ग़रीबों को सता-सताकर मोटे होते हैं।"

एक बोला— 'ये लोग ज़रा-ज़रा-सी बात पर मारने-मरने पर उतारू हो जाते हैं।"

"वह समय गया।" पीताराम ने चुटकी भरते हुए कहा— "हम लोग भी क्षत्रिय हैं। अहीर-महासभा ने शास्त्र के प्रमाणों से सिद्ध किया है कि हम लोग चंद्रवंशी क्षत्रिय हैं। हम वर्ण में हैं। सिवा शुद्ध ब्राह्मण के और किसी के हाथ की पकाई कच्ची रसोई नहीं ग्रहण करते। यज्ञोपवीत के हम अधिकारी हैं। फिर हममें-इनमें क्या छुटाई-बड़ाई है?" एक क्षण बाद ही ख़ूब हँसकर बोला—"एक दिल्लगी की बात सुनो। यह हेतसिंह इतना वचन-घाती है कि भरी सभा में चंदे का वायदा करके भी इसने टालमटोल के सिवा और कुछ नहीं किया। बड़ा पगगड़ सिर पर रख लिया और समझ लिया कि बड़े हो गए।"

(२०)

बहुत शीघ्र सभा का दूसरा अधिवेशन करने की ज़रूरत पं० नवलविहारी को इसलिये पड़ी कि प्रस्तावित धनुष-यज्ञ-लीला के लिये उनके एक मित्र ने १००) की एक बँधी रक़म

उन्हें दे दी थी। लगभग ८०) उन्होंने चंदे से जमा कर लिया। १५०) या २००) और चाहिए थे। भगवान् की इच्छा से यह भी हो जायँगे, ऐसा उनका विश्वास था। उन्होंने इस १००) की रक़म को पाकर निश्चय किया कि लीला आरंभ करने का आयोजन शीघ्र कर देना चाहिए। इसीलिये वहाँ उस दिन मंडली के लोग एकत्र हुए।

हेतसिंह उस दिन के वाग्युद्ध में अपने को विजेता समझते हुए भी पीताराम के प्रति सुहृद्भावों से भरे हुए न थे। उनके जी में रह-रहकर यह प्रश्न कई बार उठ चुका था, "पीताराम अहीर की इतनी हिम्मत हुई ही कैसे, और क्यों ?"

पं० नवलविहारी ने प्रभुता-पूर्ण मुस्किराहट के साथ कहा—"आप लोगों को सुनकर हर्ष होगा कि एक सज्जन ने १००) दान दिया है। अब लीला शीघ्र आरंभ कर देनी चाहिए। एक कार्य-कारिणी समिति बना ली जाय, और उसके पदाधिकारी चुन लिए जायँ।"

लखपत ने नवलविहारी से पूछा—"अपने यहाँवालों का तो चंदा सबका आ गया होगा ?"

लापरवाही के साथ नवलविहारी ने उत्तर दिया—"उसकी कोई चिंता नहीं। आ जायगा। अपने पास अब इतना रुपया हो गया है कि धनुष-यज्ञ किया जा सकता है।"

पीताराम ने कहा—"तो क्या इसका यह मतलब है कि

जिन लोगों ने चंदा अभी तक नहीं दिया है, आगे उन्हें न देना पड़ेगा ?"

नवलविहारी बोले—"ऐसी बात तो नहीं है। वे लोग दे देंगे।"

हेतसिंह की आँखें जल उठीं।

लखपत ने नम्रता-पूर्वक निवेदन किया—"मालूम तो हो जाय, किस-किसने नहीं दिया है।"

सहसा सबकी आँखें एक पल के लिये हेतसिंह की ओर घूम गईं, परंतु तुरंत वहाँ से फिसलकर फिर इधर-उधर भटक गईं।

हेतसिंह ने धारदार आवाज़ में कहा—"तुम लोग हमारा अपमान करने पर तुले हुए हो। हमने निश्चय किया है कि तुम्हारे आक्षेपों पर हम झुकेंगे नहीं, और जब तक जी चाहेगा, एक पैसा न देंगे।"

"यह तो हम पहले से जानते थे।" पीताराम ने हँसकर कहा। लखपत नीचा मुँह करके, कपड़ा मुँह में दाबकर उसी क्रिया को देर तक करता रहा।

हेतसिंह अपने रोष पर अपने को मूर्ख अवगत करने लगे। भर्राए हुए कंठ से बोले—"पंडितजी, बात बहुत बढ़ गई है। सहन से बाहर हो रही है।"

नवलविहारी ने कुछ कहना चाहा, परंतु समझ में न आया कि क्या कहें, और किससे कहें। तो भी मुस्किराकर

बोले—"अजी, बात मत बढ़ाइए। हर्ष के साथ प्रभु का धनुष-यज्ञ कीजिए।"

पीताराम ने धीरे से, किंतु दृढ़ता के साथ कहा—"मैंने तो अपना चंदा बहुत पहले ही दे दिया है।"

हेतसिंह ने आँखें तानकर ज़ोर से कहा—"कुछ रुपल्ली चंदा दे डालने से बड़े आदमी बन गए। दिमाग़ आकाश में चढ़ गया। गँवार की अक़्ल चोटी में होती है।"

हेतसिंह ने यह कहकर सब भर पाया।

पीताराम ने पृथ्वी पर हाथ पटककर, अंगद के पद-प्रक्षेप का अभिनय-सा करते हुए कहा—"गँवार तो अपनी ज़बान से चीन्ह लिया जाता है। बहुत ठकुराई का घमंड मत करना। हम भी क्षत्रिय हैं।"

टीकाराम, जो अब तक चुप बैठे थे, बात का ढंग बेढब बढ़ता हुआ देखकर बोले—"धनुष-यज्ञ चाहे करो या न करो, परंतु आपस में इस तरह मत लड़ो।"

नवलविहारी कुछ कहना चाहते थे, परंतु उन्होंने अभी यह निर्णय न कर पाया था कि साधारण लपेट के निवारण का भाषण करें या किसी ख़ास व्यक्ति से कुछ कहें।

हेतसिंह ने ख़ूब मुँह बनाकर कहा—"ओ हो हो, क्षत्रिय! क्या ठीक चंद्रमा या सूर्य के बेटे हैं आप!"

पीताराम खड़ा होकर बोला—"पंडितजी, इन्हें रोक लीजिए;

पीछे कुछ न कहना। जिस समय मेरी लाठी उठ जायगी, फ़िर कोई ठाकुर-वाकुर सामने खड़ा न रहने पावेगा।"

"मैं तुम्हें एक चुटकी से मसल सकता हूँ, और तुम्हारी लाठी को पैर के तले रौंद सकता हूँ। जानते हो, अहिरऊ, हमको।" हेतसिंह ने गरजकर कहा।

पीतराम दाँत पीसकर बोला—"आगे बोले, तो जीभ खींचकर बाहर फेंक दूँगा।"

नवलविहारी अब निश्चय पर पहुँच गए। पीताराम से बोले—"तुम आज चौधरी बहुत बढ़ रहे हो। चुप रहो, और शांत होकर बैठ जाओ।"

टीकाराम ने भी कुछ प्रबल कंठ से कहा—"अब चुप रहिए। हम लोग बात को इससे आगे नहीं बढ़ने देंगे।"

लखपत ने कहा—"झगड़ा बढ़ाने का काम नहीं है चौधरी।"

"क्यों जी, क्या यह सब बखेड़ा मेरा उठाया हुआ है?" पीताराम ने अदम्य तीव्रता के साथ कहा—"मुझसे गँवार कहा, सिर की चोटी में मेरी अक़्ल बतलाई।"

"और तुमने लाठी दिखलाई, ज़बान खींचने का आतंक बतलाया।" नवलविहारी ने कहा—"बात तुम्हीं ने इतनी बढ़ाई, परंतु अब ख़ामोश रहो। व्यर्थ कलह मत करो।"

टीकाराम बोले—"ऐसी वाहियात बात कभी किसी से

नहीं कहनी चाहिए। अरे भाई, जो आध सेर आटा खाता है, वह लाठी भी चला सकता है।"

पीताराम ने काँपते हुए गले से कहा—"आप सब लोग हेतसिंह का पक्ष कर रहे हैं, और दोषारोपण उलटा मेरे ऊपर कर रहे हैं। मैं नहीं जानता था कि इस सभा में ऐसा अन्याय किया जा सकता है।"

"जी हाँ, आपको लाठी चला लेने दी जाय, जीभ निकाल लेने दी जाय, तब न्याय होगा!" हेतसिंह ने कहा। और भी कुछ कहना चाहते थे कि टीकाराम ने ज़ोर से हाथ दबाकर चुप कर दिया।

पीताराम बोला—"पंडितजी, हमारा ठीक-ठीक न्याय कीजिए, अन्यथा सभा से हमारा इस्तीफ़ा लीजिए।"

नवलविहारी न्याय करना जानते थे या नहीं, यह तो वही जानें, परंतु उन्होंने कहा—"ऐसी छोटी-छोटी टुच्ची बातों पर जान देना बुद्धिमानों का काम नहीं। ऐसी बातों पर तो ध्यान ही न देना चाहिए। देखो न, ठाकुर साहब तो बेचारे कुछ कहते नहीं, चुप हो गए हैं, परंतु तुम उसी पीसने को पीसते चले जा रहे हो।"

लखपत भी शांति-स्थापना की सदिच्छा से बोला—"जाने भी दो चौधरी। बात बढ़ाने से क्या लाभ? चाँय-चाँय छोड़ो, कुछ हरि-चर्चा होने दो।"

पीताराम खीझकर बोला—"ऐसा अंध-पक्षपात कभी नहीं

देखा गया होगा । मैं अभी इस्तीफ़ा देता हूँ। जहाँ शांति-पूर्वक भगवद्भजन नहीं हो सकता, वहाँ बैठना भी अधर्म है।" और, नीचा सिर किए हुए वहाँ से चला गया।

उसके चले जाने पर कुछ पल सन्नाटा छाया रहा।

नवलविहारी सबसे पहले बोले—"पीताराम का अब पीठ-पीछा है। परंतु यह कहना पड़ेगा कि जो कुछ हुआ, अच्छा नहीं हुआ।"

इस गोल-मोल निर्णय पर लखपत को संतोष न हुआ। उसने कहा—"असल में चौधरी के साथ हुआ अन्याय है। परंतु जो कुछ हुआ, हो चुका। अब आगे ऐसा नियम बना लेना चाहिए, जिसमें इस तरह का उपद्रव न होने पावे।"

"उपद्रव क्या हुआ है ?" हेतसिंह ने ज़रा नरम स्वर में पूछा—"और किसने किया है ? जब देखो, तब वही चर्चा। जब देखो, तब और कोई चर्चा ही नहीं ! चंदा, चंदा, चंदा ! दे दूँगा । कल ले लेना। जितने का वचन दिया था, उससे दुगुना कल दे दूँगा।"

नवलविहारी ने देखा कि प्रयत्न करने पर भी झगड़ा ख़त्म न होगा, इसलिये चार-पाँच दिन के लिये उन्होंने सभा स्थगित कर दी।

(२१)

पीताराम ने अपनी मनोवेदना को दूसरे दिन एक व्यावहारिक रूप दिया। अपनी जाति के कुछ अग्रगण्यों को बुलाकर

उनसे कहा—"हम लोग वर्ण के आदमी हैं, परंतु धर्म-कर्म ठीक तौर पर नहीं होता। हम लोगों को अपनी जाति की एक कीर्तन-मंडली बनानी चाहिए।"

इस प्रस्ताव पर किसी को एतराज़ नहीं हुआ। परंतु वह कीर्तन-मंडली क्या होगी, किस तरह की होगी, उसमें ठीक-ठीक क्या होगा, यह बात उन लोगों की समझ में यथावत् न बैठी।

पीताराम ने सब बातें ब्योरेवार समझाईं, और अंत में कहा—"हम लोग धनुष-यज्ञ की लीला करेंगे।"

संबोधित व्यक्तियों में से एक ने पूछा—"पात्र कहाँ मिलेंगे? हमारे लड़के तो स्वरूप नहीं बन सकते। ब्राह्मणों के लड़के चाहिए।"

"बहुत मिल जायँगे।" पीताराम ने दृढ़ विश्वास के साथ कहा—"बहुत रुपया ख़र्च न होगा। जो कुछ बन सकेगा, मैं दूँगा। बाक़ी के लिये जाति के लोगों में चंदा किया जाय। जाति के बाहर चंदा न माँगा जाय।"

"बहुत रुपया हो जायगा।" दूसरे ने कहा—"कितना रुपया चाहिए?"

"चार सौ रुपए में साधारण धूमधाम की लीला हो सकती है, परंतु अहीर-ठाकुरों का नाम एक सहस्र रुपए की लीला से ख़ूब विख्यात हो जायगा।"

"हम लोग चंदा देंगे।" सबने कहा।

पीताराम उत्साह-पूर्वक बोला—"हम उन घमंडियों को दिखला देंगे कि हमारी जाति कितनी सजीव है।"

एक व्यक्ति ने पूछा—"रुपया कब तक इकट्ठा हो जाना चाहिए ?"

"चार दिन में।" पीताराम ने उत्तर दिया—"रुपया इकट्ठा होते ही लीला का प्रबंध कर दिया जायगा। यदि रुपया चार दिन में इकट्ठा हो जाय, तो पंद्रहवें दिन धनुष-यज्ञ आरंभ हो जायगा।"

सबने स्वीकार किया।

पीताराम ने और भी उत्साहित होकर कहा—"हम लोगों को कुछ जातियाँ नीची दृष्टि से देखती हैं। हम उन सबके दाँत खट्टे करना चाहते हैं। हम लोगों को अब यह निश्चय करना होगा कि जो लोग हमारे यहाँ खाने-पीने का व्यवहार बनाए रखने से परहेज़ रखते हैं, उनके यहाँ खाने-पीने का हम भी कोई संबंध न रक्खेंगे।"

एक बुड्ढे ने कहा—"इसका सधना कठिन है।"

दूसरा बोला—"कुछ कठिन नहीं। अपनी सभा में जो बात तय हो चुकी है, उसका अनुसरण किया जायगा।"

पीताराम बोला—"क्षत्रिय जिन जातियों के हाथ का बनाया हुआ पका भोजन नहीं खाते, उनके यहाँ हम लोग भी न खायँगे।"

एक व्यक्ति ने कहा—"हमारे यहाँ वैश्य लोग खाना

नहीं खाते, तब क्या हमें भी उनके यहाँ का खाना छोड़ना पड़ेगा ?"

पीताराम ने उत्तर दिया—"अवश्य। वैश्य लोग क्षत्रियों के यहाँ खाना गटागट खा जाते हैं, फिर हमारे यहाँ भोजन करने में क्यों मीन-मेख करते हैं ?"

उसी व्यक्ति ने कहा—"तब बाजार की पूड़ी-मिठाई इत्यादि सब छोड़नी पड़ेगी, क्योंकि वह सब वैश्य लोग ही तैयार करते हैं।"

पीताराम ने मंतव्य प्रकट किया—"आरंभ में कुछ क्लेश मालूम होगा, परंतु हम लोग किसी ब्राह्मण को हलवाई की दूकान करा देंगे। और, वैसे भी बाज़ार का खाना बहुत अशुद्ध है। न-मालूम कौन कब छू जाता होगा, हलवाई को पता भी न लगता होगा।"

बुड्ढे ने कहा—"धर्म भगवान् के हाथ है, परंतु इतनी परख रखना बहुत कठिन है। नल का पानी पीना पड़ता है, रेल-गाड़ी पर चढ़ना पड़ता है। कहाँ-कहाँ बचाव करें ?"

पीताराम ने जवाब दिया—"जहाँ-जहाँ हो सके। विश्वास रखिए, जो लोग हमारे हाथ की पक्की रसोई से एतराज़ करते हैं, उनसे हमें कोई प्रेम नहीं हो सकता।"

(२२)

मंगल का बुखार चला गया, परंतु उससे एक दिन भोजन नहीं किया गया। बहुत निर्बल हो गया था। दूसरे दिन जो

कुछ मिला, खा लिया। वह किसी धुन में था, इसलिये किसी आचार-विचार की परवा न रही।

तीसरे दिन सवेरे रहमतुल्ला के मकान के दरवाज़े पर नंगे सिर बैठा हुआ उसी चिट्ठी को पढ़ रहा था। गाँव में चहल-पहल बहुत कम थी। हिंदू कोई गाँव में थे नहीं। मकान जल-भुनकर ख़ाक हो गए थे। आगी के चिटकने का शब्द शांत हो चुका था। गाँव के युवा मुसलमान किसी आनेवाली आफ़त की आशंका से इधर-उधर छिपे हुए थे।

चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते मंगल ने एक आवाज़ पर सिर उठाया। एक ओर से घोड़े पर सवार एक फ़ौजी अफ़सर और कुछ घुड़सवार आ पहुँचे। उनमें एक पुलिस-अफ़सर भी जान पड़ता था। फ़ौजी अफ़सर सवारों के साथ आगे बढ़ गया। केवल पुलिस-अफ़सर और दो सवार उसके साथ रहमतुल्ला के मकान के सामने खड़े रहे।

मंगल ने आसन नहीं छोड़ा।

पुलिस-अफ़सर ने कड़ककर मलायलम में गाली दी, और भी कुछ कहा। मंगल की समझ में कुछ न आया। उसने हिंदी में कहा—"क्या चाहते हो? मैं बीमार हूँ। उठ नहीं सकता।"

पुलिस-अफ़सर टूटी-फूटी हिंदी बोल सकता था। बोला—"तुम कौन हो?"

"आप किसे चाहते हैं?" मंगल ने पूछा।

"बाग़ियों को।" अफ़सर ने कहा—"अब बतलाओ, तुम

कौन हो, और इस गाँव के सारे बदमाश तुमने कहाँ छिपा रक्खे हैं? सच-सच बतलाओ, नहीं तो गोली मार दी जायगी।"

मंगल ने कर्कशता के साथ कहा—"बिलकुल सच बात यह है कि मैं बाग़ी हूँ। मैंने यहाँ के सब बदमाशों को तुम्हारे आने की ख़बर पहले ही देकर यहाँ से रूपोश कर दिया है।"

अफ़सर ने पास आकर मंगल को घूर-घूरकर देखा। बोला—"तुम्हारे हाथ में यह ग़दर की चिट्ठी है शायद। इसे इधर दो।"

मंगल ने चिट्ठी छिपाने की चेष्टा की। अफ़सर घोड़े पर से उतरा, और उसने ज़बरदस्ती चिट्ठी लेकर अपनी जेब में रख ली। मंगल का पीला चेहरा लाल हो गया।

अफ़सर ने अपने साथी सवारों से कहा—"यह बीमारी का बहाना बना रहा है। इसे पकड़कर ले चलो। अगर सच हाल नहीं बतलाएगा, तो गोली मार दी जायगी।"

मंगल लड़खड़ाते हुए खड़ा हो गया।

बोला—"जहाँ कहो, वहाँ चलने को तैयार हूँ। मैंने पहले ही कह दिया कि मैं बाग़ी हूँ। मुझे गोली मार दो। अभी, इसी दम।"

"मुसलमीन है?" अफ़सर ने पूछा।

"बेशक मुसलमीन हूँ। पक्का मोपला और बाग़ी। मार डालो।" मंगल ने उत्तर दिया।

"कभी नहीं।" किवाड़ों की आड़ से रहमतुल्ला की बीबी

ने मलायलम में कहा—"हिंदू है। क़ाफ़िर है। बंबई का रहनेवाला है।"

"यह कौन है?" अफ़सर ने पूछा।

मंगल ने किवाड़ों की ओर मुड़कर देखा। वह न दिखलाई पड़ी। परंतु बड़े बच्चे का छोटा-सा सिर किवाड़ों में होकर झाँक रहा था।

मंगल ने कहा—"यह एक पागल औरत है। क्या कहती है?"

"तुम्हारे सिर पर चोटी नहीं है। तुम ज़रूर मुसलमीन हो। उत्तरी हिंद में रहे हो। वहीं से इस मुल्क में बदमाशी लाए हो, और मोपलों को उभाड़ते फिर रहे हो।"

"यह सब सच है।" मंगल ने कहा।

अफ़सर बोला—"तुम्हारा नाम?"

मंगल—"मंगलख़ाँ।" मंगल ने कहा, और तुरंत उसके चेहरे पर मुर्दनी छा गई। शिथिल होकर गिरने को हो था कि अफ़सर ने थाम लिया। वह उसके साथ कुछ ज़्यादती करता। परंतु उसकी हीन दशा देखकर हाथ रोक लिया। ज़रा धीमे स्वर में कहा—"मैं हिंदू हूँ। सच बतलाओ, तुम कौन हो? तुमको मोपलों ने ज़बरदस्ती मुसलमान तो नहीं कर डाला है?"

मंगल कुछ क्षण में सँभल गया। बोला—"मैं मुसलमीन हूँ। इससे अधिक और कुछ नहीं बतलाऊँगा। एकमात्र

प्रार्थना यह है कि मुझे मार डालो। गोली से मार डालो। एक पल भी नहीं जीना चाहता।"

"यह किसका मकान है?" अफ़सर ने पूछा।

"रहमतुल्ला का।" मंगल ने उत्तर दिया।

"कहाँ गया?"

"नहीं मालूम। यहीं कहीं गाँव में होगा।"

अफ़सर ने सोचा कि औरत को तंग करने से कुछ पता लगेगा। बोला—"मैं भीतर जाकर देखता हूँ।"

"भीतर न जा सकोगे।" निर्बल मंगल ने सबल स्वर में कहा।

"जानते हो, फ़ौजी इंतज़ाम हो गया है, और बहुत जल्द मार्शल-लॉ जारी होनेवाला है।" अफ़सर बोला।

मंगल में अकस्मात् स्फूर्ति आ गई। उछलकर, दरवाज़े के सामने तनकर जा खड़ा हुआ। बोला—"मेरे जीते-जी इस अकेली स्त्री और उसके बालकों का तुम अपमान नहीं कर सकोगे। मुझे मारकर भीतर जाने पाओगे।"

स्त्री ने वार्तालाप नहीं समझा, परंतु घटना समझ गई। तुरंत अपने दोनो बच्चों को लेकर बाहर आ गई। मलायलम में बोली—"क्या चाहते हो? मारोगे हमको? मार डालो।"

एक क्षण विमूढ़-सा खड़ा रहकर अफ़सर बोला—"हम लोग औरतों की बेइज़्ज़ती नहीं करना चाहते, चाहे वे

बाग़ी मोपलों की क्यों न हों। परंतु हम घर ज़रूर तलाश करेंगे ।"

"तलाश कर लो।" स्त्री ने कहा, और भीतर जाने के लिये हाथ हिलाया। अफ़सर एक सिपाही के साथ पिस्तौल हाथ में लेकर भीतर चला गया। मकान छोटा था। तलाशी लेकर शीघ्र लौट आया।

बाहर आकर मंगल से बोला—"तुमको साहब के पास चलना पड़ेगा।"

"चलो।" मंगल ने कहा—"मुझको तो ऐसी जगह ले चलो, जहाँ कोई गोली मार दे। आपका साहब यदि पंजाब के मार्शल-लॉ की पुनरावृत्ति मेरे विषय में कर दे, तो बड़ा सुख होगा।"

चलने के पहले मंगल ने रहमतुल्ला की पत्नी को हाथ जोड़कर नमस्कार किया। वह इस तरह के हिंदू-प्रणाम से परिचित थी। उसने भी हाथ जोड़कर नमस्कार किया। बच्चे रो रहे थे। उसने बड़े बच्चे के सिर पर हाथ रखकर मंगल को संबोधन किया, और फिर अपनी छाती पर हाथ छू दिया, मानो कहती हो कि मैं तुमको अपने इसी बालक की तरह समझती हूँ।

(२३)

उस थोड़ी देर के प्रयत्न से ही मंगल थक गया था। बहुत थोड़ी दूर चलकर बैठ गया। मंगल ने उसको दरवाज़े

पर विघ्न-बाधा दी थी, वह उक्त पुलिस-अफ़सर के मन में ताज़ा थी। उसने मंगल को पीठ पर अपना कोड़ा फटकारने का शुभ संकल्प किया ही था कि सामने से फ़ौजी अफ़सर लौटता हुआ दिखलाई पड़ा।

उसके आने पर रहमतुल्ला की पत्नी अपने बच्चों को लेकर मकान के भीतर चली गई। फ़ौजी अफ़सर ने हिंदुस्थानी पुलिस-अफ़सर से अँगरेज़ी में कहा—"किसी आदमी का निशान यहाँ नहीं मालूम पड़ता। केवल औरतें इधर-उधर हैं। इस आदमी से कुछ हाल मालूम हुआ ?"

पुलिस-अफ़सर ने कहा—"ठीक-ठीक अभी तक कुछ नहीं बतलाया। नाम से हिंदू मालूम पड़ता है, परंतु अपने को मुसलमान बतलाता है। कहता है, मैं बाग़ी हूँ। मुझको गोली मार दो। बाग़ी ज़रूर है, परंतु इधर का रहनेवाला नहीं है। उत्तर-हिंद का आदमी मालूम होता है। जान पड़ता है कि मोपलों को भड़काने के लिये आया था। एक काग़ज़ इसके पास पाया गया है।" और, उसने अपनी जेब से निकालकर काग़ज़ उस अँगरेज़-अफ़सर के हाथ में दे दिया। वह हिंदी बिलकुल न जानता था। परंतु बारीकी के साथ उसमें बग़ावत को तलाश करता रहा।

मंगल साधारण अँगरेज़ी बोल और समझ लेता था। अँगरेज़ी में कहा—"वह चिट्ठी मेरी पत्नी की है। उसे दे दीजिए।"

अँगरेज़ अफ़सर ने चौंककर उसकी ओर देखा। बोला—"अँगरेज़ी समझ सकते हो ?"

"कुछ-कुछ।" मंगल ने जवाब दिया।

अँगरेज़ ने कहा—"तुम यहाँ के रहनेवाले नहीं हो। उत्तर-हिंद के हो। यहाँ क्यों आए ?"

"मरने।"

मंगल के चेहरे पर क्लेश छिपाए भी नहीं छिप रहा था। अँगरेज़ ने ताड़ लिया। बोला—"तुम्हारा कौन-सा शहर है ?"

"बाँदा" मंगल के मुँह से अनायास निकल पड़ा। फिर तुरंत बोला—"परंतु मुझको यहीं का समझो। गोली मार दो। मैं अब जीना नहीं चाहता।"

"यह चिट्ठी किसकी है ?" उसने पूछा।

"इससे तुमको कुछ मतलब नहीं। तुम तो मुझको मार दो। और कुछ नहीं चाहता हूँ, और न कुछ और बतलाऊँगा ही।" मंगल ने उत्तर दिया।

"मुसलमान हो ?"

"हाँ, मोपला। मारने में देर मत करो। कष्ट हो रहा है।"

"अभी नहीं मारेंगे।" फ़ौजी अफ़सर ने कहा—"तुमको मलाबार भेजकर जाँच कराएँगे। वहाँ तुम्हारी इस चिट्ठी की बातों की छान-बीन की जायगी। अपराध साबित होने पर तब दंड दिया जायगा।"

मंगल ने धृष्टता के साथ कहा—"परंतु इतनी छान-बीन तुम लोग पंजाब के मार्शल-लॉ के समय में नहीं करते थे! मैं तुमसे प्राण-भिक्षा माँगता होता, तो यह सब छान-बीन करते। मैं तो कहता हूँ कि इसी समय मारकर कहीं मेरी लाश फेंक दो।"

अँगरेज-अफ़सर ने भौंहें तानकर पुलिस-अफ़सर से कहा—"इसको तुरत घोड़े पर चढ़ाकर मलाबार पहुँचाओ। बीमार मालूम होता है, इसलिये पैदल नहीं जा सकेगा। इस चिट्ठी को उचित स्थान पर भेज दो। मैं अपना एक चिटका साथ देता हूँ। इधर से फ़ारिग़ होकर हम लोग पीछे मलाबार पहुँचेंगे।"

फ़ौजी अफ़सर ने मैजिस्ट्रेट को लिखा कि यह व्यक्ति संदेह-जनक अवस्था में पाया गया है; जो चिट्ठी इसके पास मिली है, वह भी भेजी जाती है; जाँच की जाय।

एक सवार ने मंगल को अपने घोड़े पर डाल लिया। दूसरा उसके पीछे हो लिया, और दोनो मलाबार की ओर चल दिए। इस दल के बाक़ी लोग दूसरी दिशा में चले गए।

(२५)

मंगल मलाबार ले जाया जाकर पहले हवालात में और फिर हवालाती अस्पताल में रख दिया गया। कुछ दिन बाद, वही पुलिस-अफ़सर उसके पास आया। अँगरेजी में बातचीत हुई।

अफ़सर ने कहा—"तुम मरना क्यों चाहते थे?"

"मरना तो अब भी चाहता हूँ।" मंगल ने उत्तर दिया।

"परंतु तुम बाग़ी नहीं हो, हम लोग इस निश्चय पर पहुँचे हैं। तुम हिंदू हो, और तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है।"

"यह बात तो अस्पतालवाले भी नहीं कहते।"

अफ़सर ने कहा—"तुम अपने घर बाँदा जाना चाहते हो? मैं भेज सकता हूँ। मैं हिंदू हूँ, तुम्हारे साथ मेरी सहानुभूति है।"

"इसके लिये कृतज्ञ हूँ।" मंगल ने विना कोई विशेष भाव व्यक्त किए हुए कहा—"परंतु मैं जाना कहीं नहीं चाहता।"

"वह चिट्ठी तुम्हारी पत्नी ने तुमको घर छोड़ते समय लिखी थी। तुम्हारे माता-पिता हैं। तुम आवारा घूम रहे हो। यहाँ से घर चले जाना अच्छा होगा।"

"उस चिट्ठी में तो बग़ावत थी न?" मंगल क्रुद्धकर बोला—"वह चिट्ठी यदि आपके पास हो, तो कृपा करके दे दीजिए। उसकी अनुपस्थिति में आपके शासन पर कोई आफ़त का पहाड़ नहीं टूटेगा।"

अफ़सर ने ज़रा तेज़ होकर कहा—"मैं मित्र-भाव लेकर तुम्हारे पास आया था, परंतु तुम उल्टी बातें कर रहे हो।"

"मेरा भाव क्या ठीक शत्रुओं-जैसा मालूम होता है?" मंगल बोला।

अफ़सर कुछ सोचने लगा।

मंगल ने कहा—"आप क्या कोई ऐसा उपाय नहीं कर सकते, जिससे मैं शीघ्र समाप्त कर दिया जाऊँ ? पंजाब के भयानक दिनों में तो यह बाएँ हाथ का खेल था।"

"इसीलिये तो अभी तक यहाँ मार्शल-लॉ जारी नहीं हुआ।" अफ़सर ने मुस्किराकर कहा—"उपद्रव-पर-उपद्रव बढ़ते चले जा रहे हैं। हिंदुओं का सर्वनाश हो रहा है, परंतु सरकार पंजाब की ग़लती को याद करके फ़ौजी क़ानून जारी नहीं कर रही है। और, हिंदू ऐसे बोदे हैं कि हम लोगों की कोई मदद नहीं करते हैं।"

"कैसे ?" मंगल ने किंचित् उत्सुक होकर प्रश्न किया।

"जैसे तुम।" आँखों से बहुत बुद्धिमत्ता प्रकट करते हुए अफ़सर ने उत्तर दिया—"तुम्हें रहमतुल्ला-नामक एक बद-माश मुसलमान का पता मालूम है। शायद उसकी कुछ बातें भी जानते हो, परंतु न-मालूम किस डर के मारे तुम्हारा बोल नहीं फूटता।"

मंगल ने चौकन्ने होकर कहा—"मारा-मारा फिर रहा था, सो नेचलगढ़ी में एक दीन मुसलमान-स्त्री ने शरण दी, उसका यदि कोई संबंध रहमतुल्ला-नामक किसी व्यक्ति से हो, तो मैं कह नहीं सकता, और मुझे कुछ मालूम नहीं।"

"मैं सब पता लगा लाया हूँ।" अफ़सर हँसकर और सिर हिलाकर बोला—"क्यों छिपाते हो ? वह औरत उसी रहम-तुल्ला की पत्नी है। सब जानते हैं। कहाँ तक छिपाओगे ?"

मंगल ने रुखाई के साथ कहा—"जब आप सर्वज्ञ हैं, तब इतना कौतूहल क्यों ? ख़ैर, मेरे लिये कहिए, इतना कष्ट आपने क्यों उठाया ?"

अफ़सर ने नरम स्वर में कहा—"पहली बात तो यह है कि तुम अपनी यह चिट्ठी लो। दूसरी बात यह कि तुम रिहा कर दिए गए।" और चिट्ठी देकर पूछा—"अब कहाँ जाओगे ?"

मंगल ने कंपित स्वर में उत्तर दिया—"मार्शल-लॉ कब जारी होगा ?"

"बहुत शीघ्र।"

"तब किसी ऐसी जगह जाऊँगा, जहाँ मार्शल-लॉ मेरा संहार कर दे।"

अफ़सर के हृदय ने पुलिस-कर्मचारी के मोटे आवरण को ज़रा-सा फाड़कर बाहर झाँका। बोला—"तुम्हारी आयु कम है। तुम इधर के रहनेवाले नहीं हो। हिंदू हो। तुमने बग़ावत नहीं की है। जान पड़ता है, ज़बरदस्ती मुसमान बनाए गए हो। फिर क्यों मरना चाहते हो ? घर जाओ, और अपने लोगों में मिल जाओ।"

मंगल के मुँह से सहसा निकल पड़ा—"कौन मिलाएगा ? एक बार गिरने के बाद फिर कौन उठ सकता है ?" कुछ और कहना चाहता था। एकाएक चुप हो गया।

अफ़सर ने अपनी घड़ी की ओर देखकर कहा—"हाँ,

यह तुम ठीक कहते हो। परंतु यहाँ तय हो गया है कि तुम मलाबार-प्रांत में न रहने पाओगे, और तुमको बाँदा जाना पड़ेगा। उत्तर-भारत-सा स्थान छोड़कर इस उपद्रव-स्थली में जाने क्यों रहना चाहते हो? क्या किसी से आँख लग गई है?"

इस भयंकर संकेत पर मंगल के नेत्र रोष-रक्त हो गए। बोला—"मेरे लिये सब मा-बहनें हैं—पर तुमसे क्या कहूँ।"

अफ़सर ने ज़रा खीझकर कहा—"मेरे पास बक़वास के लिये समय नहीं। तुम्हारी इच्छा हो या न हो, बाँदा तुमको जाना पड़ेगा। पुलिस के दो सिपाही युक्त प्रांत तक पहरा बदलते हुए तुमको वहाँ के मैजिस्ट्रेट के हवाले कर आएँगे। वह जो कुछ उचित समझेंगे, करेंगे। परंतु कहना पड़ेगा कि तुम अहमक़ बड़े भारी हो।" और, वह वहाँ से चला गया।

(२५)

एक दिन सोमवती रोटी बना रही थी, और मा ठाकुरद्वारे के पास बैठी माला जप रही थी। आँख मुँद जाती थी, और खुल जाती थी। जीभ पर भगवान् का नाम था, परंतु ध्यान बटा हुआ-सा था।

इतने में बाबूराम आया। कभी-कभी आया करता था। मा उसको चाहती थी। इसलिये बाबूराम को उसके चले जाने पर भी कभी-कभी अपने घर आया देखकर एक कष्ट-पूर्ण स्मृति की बाढ़ में भी कुछ सुख अनुभव किया करती थी।

बाबूराम ने मा के भजन-पूजन का कोई लिहाज़ न करके चिल्लाकर कहा—"मा, मा, हम लोग धनुष-यज्ञ कर रहे हैं। तुम्हें चलना होगा। भाभी को भी चलना पड़ेगा।"

मा ने माला को उँगलियों में सरकाते हुए अन्यमनस्क भाव से पूछा—"कब है बब्बू ?"

"आज से आठवें दिन।" बाबूलाल ने तत्काल उत्तर दिया—"पं० नवलबिहारी का धनुष-यज्ञ होते-होते ही रह गया, और हम लोगों का होने जा रहा है।"

"तुम लोगों का कौन-सा बेटा ?" मा ने धीरे से पूछा।

"हम लोगों का पीतारामवाला समाज है न। पं० नवलबिहारी के समाज से चौधरी अलग हो गए हैं। उनके साथ बड़ा अन्याय हुआ है। मैं लक्ष्मण का रूप धरूँगा।"

"तुम लोगों ने रामचंद्रजी का अभिनय किससे कराना तय किया है ?" मा बोली।

बाबूराम ने अपनी ओर अधिक स्नेह आकृष्ट करने की नियत से कहा—"यदि बड़े भैया होते, तो उनको ही राम का स्वरूप बनाया जाता मा !"

मा ने माला गोदी में रख ली। टकटकी लगाकर आकाश की ओर कुछ पल देखा। फिर साँस खींचकर बोली—"क्यों रे बाबू, तुझे भैया का कुछ पता है ? तेरे पास तो चिट्ठी आई होगी ? वह तो तुझको बहुत प्यार करता था।"

बाबू सब तरह की गप बनाने को तैयार था। परंतु पत्र

की गप बनाने से अनेक प्रकार की उलझनों में पड़ जाने का अंदेशा था, इसलिये उदास होकर उसने सिर हिला दिया। फिर सोमवती की ओर देखकर बोला—"भाभी के पास चिट्ठी नहीं आई होगी ?"

सोमवती ने अपना घूँघट ज़रा और डाल दिया, बोली कुछ नहीं।

इतने में बाहर से किसी ने पुकारा।

मा बोली—"देख तो रे, कौन चिल्ला रहा है ?" बाबू बाहर गया। थोड़ी देर बाद दौड़ता हुआ आया, और हाँफता हुआ बोला—"मा, मा, मेरा मुँह मीठा करो।"

मा महसा उठ खड़ी हुई। सोमवती का घूँघट ऊँचा उठ गया। वह बाबूराम के विकसित नेत्र और प्रफुल्ल मुख की ओर देखने लगी। बाबूराम ने बहुत छिपाने की चेष्टा की, परंतु उसके मुँह से एकाएक निकल पड़ा—"भैया आ गए।"

"कहाँ है मेरा लाल ? कहाँ है मेरा छौना ?" मा ने दोनो हाथ फैलाकर कहा, और दो-चार क़दम आगे बढ़ी। माला नीचे गिर पड़ी। मा को मालूम न हुआ, सोमवती ज़रा-सा घूँघट डालकर फिर रोटी बनाने लगी। चूल्हे में रोटी न थी, परंतु सोमवती ने अंगारों पर हाथ डाल दिया। उँगलियाँ ज़रा जल गई, लेकिन कुछ मालूम न हुआ।

बाबूराम ने कहा—"बाहर नहीं हैं। थाने में हैं। पुलिस का सिपाही बाहर खड़ा है। कोई सम्मन लाया है।"

"तो जा बेटा, उसको ले ले, और सिपाही को एक रुपया दे आ। उससे कह दे कि बिना भोजन किए न जाय।"

बाबूराम रुपया लेकर बाहर दौड़ा गया। सिपाही से बोला—"मा ने यह रुपया इनाम में दिया है। भोजन करने के लिये भी कहती हैं।"

सिपाही ने रुपया लापरवाही के साथ जेब में रख लिया। भोजन करने से इनकार कर दिया। उसकी आँखों में कोई कृतज्ञता न थी, परंतु आवाज़ नरम थी। बोला—"लड़के, सम्मन ज्योतिषीजी के नाम है। तुम्हें नहीं दे सकते। जब आ जायँ, तब थाने पर भेज देना। ज्योतिषीजी से कह देना कि उनका लड़का बीमार है, उसे जल्द घर ले आवें।"

सिपाही चला गया। बाबूराम ने उसकी सूचना मा के कानों तक पहुँचा दी।

"बीमार है! बीमार! कब से बीमार है? क्यों बीमार है? कुछ खाया है या नहीं? बाबू बेटा, तू ज़रा थाने पर चला जा। मेरे लाल से कह देना कि थानेवालों का बुरा न माने। उसके दादाजी ने हुलिया कटवा दी थी, इसीलिये वे लोग इस तरह से उसे पकड़कर ले आए हैं। मैं थोड़ा-सा पकवान और पानी देती हूँ। हरीराम के साथ चला जा, और उससे कह आना कि दादाजी अभी आकर लिवा ले जायँगे।"

बाबूराम कुछ पकवान और पानी लेकर जाने को हुआ। तब

हरीराम की तलाश हुई। परंतु वह नहाने-धोने के लिये केन में गया था। न मिला। तब मा बोली—"बेटा बाबू, तुम अकेले चले जाओ। हरीराम जब आ जायगा, दाराजी की खोज में भेजूँगी। ऐसा राक्षस है कि दिन-भर न-जाने कहाँ रहता है, और मंगल के दादा भी न-जाने कितने निठल्ले हो गए हैं कि अब तक घर पर लौटकर नहीं आए।"

बाबूराम खाना और पानी लेकर चला गया। सोमवती घूँघट डाले हुए ही चौके से बोली—"माजी, थोड़ा-सा भोजन कर लो, फिर न-मालूम कितनी देर लग जायगी।"

सोमवती के भीगे हुए घूँघट को देखकर मा ने कहा—"धुएँ के मारे तेरी आँखें पानी बहा रही हैं, इधर आ।" सोमवती चौके से उठ आई। उसने घूँघट और नीचा कर लिया। मा ने उसे गले लगाकर कहा—"मेरी रानी, मेरी सीता। तेरे ही भाग्य से मैंने अपना हीरा फिर पाया है, नहीं तो हम अभागों के पाप तो उदय हो ही चुके थे।"

सोमवती ने रुँधे हुए गले से कहा—"माजी, यह तुम क्या कहकर मुझे काँटों में डाल रही हो? आपकी गिनती देवताओं में है। आपके ही पुण्य-प्रताप से यह संसार टिका हुआ है।"

इतने में कंधे पर गीली धोती डाले हुए हरीराम आया।

मा ने कहा—"क्यों रे हरीराम, तू अब बड़ा आलसी हो गया है। कितनी देर से तेरे लिये सारा शहर ढूँढ़ा जा रहा है। पता नहीं, क्या किया करता है, कहाँ रहता है?"

बात टोककर हरीराम ने कहा—"अभी तो गया ही था, परंतु तुम्हारा तो स्वाभाव ही झक-झक करने का हो गया है। अब बूढ़ा हो गया हूँ। काम नहीं बनता है। घर छोड़ नहीं सकता, इसलिये किसी दिन गोली से मरवा दिया जाऊँ, तो मेरी भी छुट्टी हो, और तुम्हारी भी दिक़्क़त दूर हो।" हरीराम गीली धोती खूँटियों पर फैलाने लगा।

मा ने कहा—"अरे ओ राच्छस, आज ही देख तुझे कितना पिटवाती हूँ। तू अभी तक यहीं चबड़-चबड़ कर रहा है। जा, पंडितजी को बुला ला। भैया आ गया है। कोतवाली में है।"

हरीराम के हाथ से गीली धोती छुट पड़ी। कुछ क्षण मुँह से बोल नहीं निकला।

"तो क्या तुझे नहीं मालूम हरीराम ?" मा ने पूछा।

हरीराम बोला—"भैया आ गए ? कोतवाली में हैं ? मैं जाता हूँ।" धोती मिट्टी में गिरकर लिटुरने लगी। हरीराम दौड़कर गया। फिर भीतर आकर बोला—"मैंने ज़माना देखा है। तुम लोग कुछ नहीं समझ सकते। पुलिसवाले यों ही थोड़े भैया को छोड़ देंगे ? मैं उनके लिये संजीवनी बूटी अपने साथ लिए जाता हूँ।" और, हरीराम जल्दी-जल्दी एक कोठरी के कोने में से कुछ ढूँढ़कर उघारे बदन भागता हुआ चला गया। मा ने 'दादाजी' को ढूँढ़ने के लिये कहा, परंतु उसने कुछ न सुना।

(२६)

मलावार से मंगल पुलिस के पहरे में बाँदा आया था। मलावार के ज़िला-मैजिस्ट्रेट की चिट्ठी भी बाँदा के ज़िला-मैजिस्ट्रेट के नाम मंगल के विषय में आई थी।

मलावार की पुलिस-हवालात में जब मंगल से पुलिस-अफ़सर मिला था, तब उसने बाँदा में मंगल के ख़िलाफ़ किसी कारखाई के किए जाने का एक प्रच्छन्न संकेत किया था—परंतु उसे स्वयं ठीक-ठीक यह न मालूम था कि मंगल के बाँदा पहुँचाए जाने पर फिर क्या होगा। चिट्ठी में केवल यह हिदायत थी कि मंगल को उसके किसी अभिभावक के सिपुर्द करके, ज़मानत लेकर छोड़ दिया जाय। बाँदा की पुलिस का सिपाही मंगल के घर पर इसी विषय की एक विज्ञप्ति लेकर आया था।

जिस समय बाबूराम दौड़ते-दौड़ते कोतवाली पहुँचा, मंगल एक कमरे में बैठा हुआ था। वहाँ तक तो वह उतावली के साथ पहुँच गया, परंतु आगे हिम्मत न पड़ी। एक सिपाही से अपने आने का अभिप्राय कहा। सिपाही ने मिलने का निषेध किया। बाबूराम एक ओर किं-कर्तव्य-विमूढ़ होकर खड़ा हो गया। मंगल ने देख लिया। दरवाज़े के पास आया। बाबूराम बोला—"दादा, अच्छी तरह हो ?"

मंगल बहुत दुर्बल मालूम होता था। थोड़े ही दिन में कायापलट-सा हो गया था। चेहरे पर की निरंतर मुस्किराहट

ालीन हो गई थी। आँखों में पागलों-सरीखी दीप्ति
ो।

मंगल ने क्षीण स्वर में पूछा—"तुम सब लोग अच्छी
ारह हो?"

उत्तर में बाबूराम ने कहा—"तुम्हारे लिये माजी ने कुछ
ाने को भेजा है।"

मंगल ने कुछ कातरता के साथ कहा—"मा—मा, अच्छी
ारह हैं?"

बाबूराम बोला—"वह यहाँ आ रही थीं। हमने रोका,
ाब मानीं। घर कब चलोगे?" और, उसने एक भयातुर
दृष्टि सिपाही की ओर डाली।

मंगल ने आह भरकर कहा—"खाना लौटा ले जाओ। मैं
तुम लोगों के पात्रों में नहीं खा सकता। मुसलमान हो गया
हूँ।" और, उसकी आँखों में आँसू आ गए।

बाबूराम चौंक पड़ा। बोला—"मुसलमान! मुसलमान
कैसे हो गए? तुम तो वैसे ही दिखलाई पड़ते हो, वैसे ही
बोल रहे हो, जैसे पहले थे। मुसलमान कहाँ!"

मंगल बैठ गया। सिसक-सिसककर रोने लगा।

सिपाही ने कहा—"लड़के को कुछ खिलाना हो, तो खिला
दो। फिर कोई आ जायगा, तो मुश्किल होगी।"

बाबूराम कभी सिपाही की ओर और कभी मंगल की ओर
देखने लगा।

यहाँ आना नहीं चाहता था। मरने के उपाय किए, परंतु निष्फल हुए। यदि तुम लोगों में से मुझे कोई छुड़ावेगा, तो मैं अब जिऊँगा नहीं।"

"सो ? मुसलमान हो गए, तो क्या हुआ ? तुम तो मेरे वही बबुआ हो। ख़बरदार, अब ऐसी बात मत कहना।"

सिपाही ने पास आकर धीरे से हरीराम को अलग कर दिया। बोला—"थोड़ी देर में इनके बाप आए जाते हैं, तब घर लिवा जाना। अभी ज़रा दूर रहो, नहीं तो मेरी आफ़त आ जायगी।"

हरीराम बोला—"मैं पंडितजी को लेने जाता हूँ।" और, तुरंत वहाँ से चला गया।

मंगल ने बाबूराम से कहा—"तुमको मालूम नहीं, पर हवा सारे शहर में फैल जायगी। लोगों को क्या मुँह दिखलाऊँगा ? मलाबार के उस बेईमान अफ़सर ने यदि वहीं मार डाला होता, तो मैं जीवित हो जाता; परंतु यहाँ जीवित रखने के लिये उसने मार डाला।"

बाबूराम कुछ न समझा।

मंगल कहता चला गया—"थोड़ा देर में दादाजी यहाँ आएँगे, और न-मालूम कितनी भीड़ तमाशा देखने यहाँ आएगी। मैं कैसे मुँह दिखाऊँगा ? क्या करूँ ? बाबू भैया, तुम जाकर सबको यहाँ आने से मन ......

हवालात नहीं छोड़ूँगा। जेल जाऊँगा। जाओ। किसी को यहाँ मत आने दो।"

परंतु बाबूराम ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह पृथ्वी पर पड़े हुए कंकड़ बीन रहा था।

सिपाही को मंगल के आचरण पर आश्चर्य हो रहा था। इधर-उधर देखकर धीरे से उसके पास गया। "तुम क्या ख़ुशी से मुसलमान हुए थे? क्यों भाई, क्यों?" सिपाही ने पूछा।

मंगल ने रुखाई के साथ उत्तर दिया—"हाँ, हाँ, ख़ुशी से, बिलकुल ख़ुशी से।"

(२७)

सिपाही उस रूखे उत्तर को सुनकर पीछे हट गया। सामने से टीकाराम और हेतसिंह के साथ हरीराम आ गया।

हरीराम ने आते ही कहा—"महाराज, भैया को शीघ्र यहाँ से छुड़ा ले चलिए। ऐसी जगह पड़े रहने से इनका दिमाग़ कुछ खराब हो गया।"

मंगल चेहरा मसोसकर रह गया।

टीकाराम ने दारोग़ा के पास जाकर ज़मानत दे दी। मंगल के पास आकर उसे छाती से लगा लिया। हेतसिंह ने भी छाती से लगाया। एक बात कहने के लिये मंगल की तबियत ने हिलोर मारी, परंतु रुक गया।

चुपचाप नीचा सिर किए घर की ओर चला। इधर-उधर से भीड़ लग-लग जाती थी, और शिथिल हो जाती थी। लोग-

लोग कहते थे—"यह वही लड़का है, जो घर से कुछ दिन हुए भाग गया था। हुलिया कटी थी। अब पकड़ा गया है। बड़ा आवारा है।"

घर पर पहुँचकर मंगल बाहर के कमरे में बैठ गया। इधर-उधर से सवाल-पर-सवाल होने लगे—"कहाँ थे?" "क्या करते थे?" "क्यों चले गए थे?" परंतु मंगल किसी बात का उत्तर न देता था।

बाबूराम ने कहा—"मा कहती हैं कि भैया भूखे होंगे, उनसे इस समय और कोई बात न पूछी जाय। सवाल-जवाब के लिये बहुत वक्त मिलेगा।"

हरीराम ने भी आग्रह के साथ इसी मंतव्य को दुहराया।

टीकाराम की भी रुचि बातों की ओर न देखकर सब लोग धीरे-धीरे वहाँ से चले गए। कहते गए—"अब ऐसा मत करना, घर-भर को इस बीच में बड़ा कष्ट रहा।"

बाबूराम के सिवा इन सब लोगों के चले जाने पर टीकाराम ने स्नेह-पूर्वक मंगल से कहा—"जो हुआ, उसे भूल जाओ। तुम्हारे यहाँ से चले जाने का कारण मेरा कड़ुआ व्यवहार था। अब कोई तुम से कुछ न कहेगा। चलो भीतर। तुम्हारी मा देखने के लिये बुला रही हैं।"

मंगल ने नीचा सिर किए हुए कहा—"मुझको दादाजी, इस समय भूख नहीं है। आप भोजन करें। जी अच्छा नहीं है।"

"सो तो ऊपर से ही दिखाई दे रहा है।" टीकाराम ने काँपते हुए गले से कहा—"न-मालूम कितने कष्ट सहे हैं। देखकर कलेजा टूक-टूक होता है। चलो भीतर, अपनी मा को एक बार दिखाई दे दो।"

मंगल रोने लगा।

टीकाराम की भी आँखों में आँसू आ गए। मंगल के सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"तुमसे कभी कोई कुछ भी न कह पावेगा। रोओ मत। तुम्हारे रोने से मेरे चित्त को बड़ा दुःख होता है।"

मंगल ने फटे हुए स्वर में धीरे से कहा—"दादाजी, मैं अब आपके काम का नहीं रहा।" टीकाराम सन्नाटे में आ गए। मंगल का मुँह ताकने लगे। जब वह कुछ समय तक न बोला, तो बाबूराम सरलता के साथ बोला—"दादाजी, भैया कहते थे कि मुसलमान हो गए हैं। मुसलमान-सरीखे तो दिखाई नहीं देते।"

टीकाराम पर जैसे वज्रपात हुआ हो। आँखों के आँसू जहाँ-के-तहाँ सूख गए। गले का स्वर गले में घुट गया।

हरीराम चिल्लाकर बोला—"लल्लू झूठ कहते हैं। उनका दिमाग फिर गया है। पागल हो गए हैं। बकते हैं।"

मंगल एक बार उसकी ओर देखकर फिर नीचा सिर करके जमीन में गड़ने-सा लगा।

टीकाराम के गले से बहुत कठिनाई के साथ प्रश्न निकला—"कैसे?"

मंगल एक लंबी आह खींचकर चुप हो गया।

थोड़े समय तक सब चुप रहे।

बाबूराम ने निस्तब्धता भंग की—"भैया, रसोई ठंडी हो रही है। मा बुला रही हैं।"

टीकाराम गला साफ़ करके बोले—"कब क्या होनेवाला है, कोई नहीं कह सकता। तुझको यह क्या सूझी, सो भगवान् ही जानें। परंतु मैं बेमौत मरा।" और, बच्चों की तरह सिसक-सिसककर रोने लगे। उनको रोता देखकर मंगल भी रोया।

हरीराम ने तीव्रता के साथ कहा—"यह क्या बात है महाराज, खुद रोते हो, और लल्ला को रुलाते हो?"

टीकाराम ने अपने को साधकर कहा—"लल्ला, यह असंभव है। तुम्हारा सचमुच दिमाग़ ख़राब हो गया है। कह दो कि यह बात झूठ है।"

मंगल ने सिर ऊँचा किया। सीधे, स्पष्ट स्वर में बोला—"आप परम वैष्णव हैं। आपको धोके में नहीं डाल सकता। मैं अब आपके काम का नहीं रहा। मुझे मर जाने दीजिए।"

टीकाराम का भी रुदन बंद हो गया। दारुण स्वर में बोले—"तुमसे मुझको और आशा ही क्या हो सकती थी? ख़ूब किया। अच्छा किया। अब क्या इरादा है?"

मंगल बोला—"मेरा विचार घर आने का बिलकुल नहीं था। पुलिस ज़बरदस्ती पकड़ लाई है।"

बड़ी वेदना के साथ टीकाराम ने कहा—"तू यदि होते ही मर जाता, तो आज यह दिन देखने को न मिलता।" और, घुटनों पर सिर रखकर विचार-मग्न हो गए।

हरीराम बोला—"यह सब क्या सोच-विचार है महाराज? मैं लल्ला की जूठन जैसे पहले खाता था, वैसे ही अब भी खाऊँगा। अब भैया को कहीं न जाने दूँगा, चाहे कोई मुझे मार भले ही डाले।"

टीकाराम उठकर भीतर चले गए।

हरीराम ने कहा—"लल्ला, ज़रा लेट जा भैया। तेरे पैर मलूँगा।" प्रयत्न करने पर भी मंगल की एक न चली। कमरे में रक्खे हुए बड़े तकिए के सहारे हरीराम ने उसको लिटा दिया, और पैर दबाने लगा।

बाबूराम बोला—"मैं धीरे-धीरे हवा करूँगा। ज़रा गरमी है।"

थकान और विचारों की लौट-पलट के कारण लंबी यात्रा किया हुआ मंगल थोड़ी देर में सो गया।

आध घंटा पीछे टीकाराम भीतर से आए। चेहरा बिलकुल मुर्झाया हुआ था, परंतु किसी विषय-निश्चय की छाप थी। धीरे से बोले—"हरीराम, मैंने पड़ोस में एक मकान इसके लिये ठीक किया है। इसके खाने-पीने, रहने-सहने का प्रबंध उसी में रहेगा। किसी ब्राह्मण के हाथों खाना पहुँचा दिया जाया करेगा। ऊपर की टहल तुम कर दिया करो। यदि

शास्त्र में प्रायश्चित्त की विधि होगी, और जातिवाले मान जायँगे, तो शुद्ध करके इसे फिर मिला लेंगे। वर्तमान अवस्था में इसे घर में दाखिल नहीं कर सकते।"

"तब मैं बराबर लल्ला के साथ रहूँगा।" हरीराम ने अपना निर्णय प्रकट किया।

"तुझे भी अपना प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।" टीकाराम ने गंभीरता के साथ कहा—"जब तक प्रायश्चित्त न कर लेगा, तू घर में न आने पावेगा।"

"मेरा घर में और रक्खा ही क्या है?" हरीराम ने अव-हेला-पूर्वक कहा।

इस बातचीत से मंगल की आँखें खुल गईं। उठकर बैठ गया। टीकाराम ने निस्संकोच भाव के साथ कहा—"शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त करके तब भीतर जा सकोगे।"

मंगल ने खड़े होकर पूछा—"तब कहाँ जाऊँ?"

"मैंने तुम्हारे लिये एक मकान पड़ोस में निश्चय किया है।" टीकाराम ने उत्तर दिया—"वस्त्रादि का इसी समय प्रबंध करता हूँ। प्रायश्चित्त के बाद फिर घर में आ जाना।"

मंगल ने कहा—"मुझे अब सदा के लिये बिदाई दे दीजिए। अब किस बात के लिये जिऊँगा?"

"हाँ! बिदा दे दीजिए!" हरीराम ने कड़े स्वर में कहा—"देखूँ तेरी हिम्मत, कहाँ जाता है? जब तक मैं जीता हूँ, खबरदार, जो फिर कहीं भागने का विचार किया।"

टीकाराम बोले—"इस समय और कुछ करने में असमर्थ हूँ। यदि भगवान् अच्छे दिन दिखलाएँगे, तो ठीक है, नहीं तो अब मेरा मरण भी दूर नहीं। परंतु जब तक मेरा जीवन है, धर्म पर लात नहीं मार सकता।" फिर कुछ सोचकर कातर स्वर में कहा—"लल्ला, तूने क्या किया ?"

बात को जरा भी न बढ़ने देने के विचार से हरीराम ने मंगल का जोर से हाथ पकड़कर कहा—"चलो, उस मकान में ही थोड़े दिन सही। कपड़े-बिस्तर पीछे आ जायँगे। बब्बू भैया, तुम कपड़े लेकर आ जाओ।"

दरवाज़े के पास से निकलते ही मंगल ने किसी का चीत्कार सुना, और गिर पड़ने का शब्द। मुड़कर देखा। ठीक उसी जगह, जहाँ एक बार अपनी पत्नी का हाथ-भर देखा था, कोई गिरा था। पत्नी का संदेह हुआ। परंतु वह न थी। इस बार उसकी मा थी। हाथ छुड़ाकर मा के पास आने की चेष्टा की, परंतु हरीराम ने न छोड़ा। घसीटता हुआ उसे ले गया।

(२८)

मंगल को हरीराम घसीटता हुआ आगे बढ़ा, पीछे-पीछे बाबूराम बिस्तर लेकर चला। मकान पचास-साठ क़दम के फ़ासले पर था।

इधर टीकाराम अपनी पत्नी के उपचार में लग गए। दुःख था और क्रोध। किस पर और क्यों था, यह उन्हें न मालूम हुआ। परंतु थे बहुत खीझे हुए और झल्लाहट में।

एक मिनट हवा करने के बाद प्रखर स्वर में बोले—"सब स्वाहा हुआ चाहता है। लड़का हाथ से गया। यह भी मिहमान मालूम होती है। हो, मेरी बला से। मैं भी प्राण छोड़ूँगा, फिर कौन किसकी सुनता है।"

सोमवती घूँघट मारे एक ओर खड़ी थी। उपचार के लिये उसे तत्पर और योग्य देखकर वह हटकर दूसरी ओर हो गए। चिल्लाने लगे—"यह हरीराम भी ऐसा पाजी है कि न-जाने कहाँ छिप गया है। ऐन वक़्त पर लापता हो जाता है बेईमान!"

सोमवती फूलरानी को प्रयास और यत्न के साथ भीतर थोड़ी दूर पर ले गई। चारपाई पर लिटाकर उसका उपचार किया। आधी घड़ी पीछे उसे होश आ गया।

पहली बात जो मुँह से निकली, वह यह थी—"कहाँ है मेरा लाल? रानी, मेरा कन्हैया कहाँ है? उसे बुला दो।"

"माजी, घबराओ मत। दादाजी बहुत व्याकुल हो रहे हैं।" सोमवती ने कहा।

नरम आवाज़ में फूलरानी बोली—"एक बार उसे छाती से लगा लूँगी, तो जी बिलकुल अच्छा हो जायगा। बहुत दुबला हो गया है। तूने देखा नहीं? कई दिन से उसे खाने को नहीं मिला। बीमार रहा है। उसे बुला दो, नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगी।"

टीकाराम एक ओर खड़े-खड़े सुन रहे थे। आकर बोले—

"अभी चुप रहो, जान न दे डालो। लड़के को दूसरे मकान में भेज दिया है। प्रायश्चित्त के बाद और जातिवालों की मंज़ूरी पर घर आ सकेगा। अभी घर में बुलाओगी, तो ठाकुर जी को कहीं फेंक देना पड़ेगा। जानती हो कि नहीं, तुम्हारा सपूत मुसलमान हो गया है। चाहे स्वेच्छा से हुआ, चाहे बलात्, हमारे लिये फल एक ही है। ऐसी दशा में हठ मत करो।" कहकर बाहर चले गए।

सोमवती दूसरी ओर देखने लगी। चेहरा पीला पड़ गया था, परंतु आँखों में आँसू न थे। फूलरानी चुप थी।

दो पल बाद टीकाराम भीतर आए। इस समय उनके चेहरे पर पहले-जैसी तमतमाहट न थी। क्षीण स्वर में सांत्वना देकर बोले—"देखो, धैर्य न डिगने पावे। लड़के के मोह में धर्म न खो देना। तुम्हारा बच्चा है, तुम्हें अवश्य मिलेगा, परंतु उसे धर्म की सीमा का उल्लंघन करके प्राप्त करने की बात जी में न आने देना। मैं अभी जाकर प्रायश्चित्त की व्यवस्था करता हूँ। बिरादरीवालों की स्वीकृति भी बहुत शीघ्र प्राप्त करता हूँ। तुम लोग शांति के साथ काम करो। उतावली न करो। अभी लल्ला को घर में न आने देना, और न उसके पास जाना।"

फूलरानी उठकर बैठ गई। बोली—'नवलविहारी तुम्हारी सभा के आदमी हैं, और जाति में उनकी चलती है। उनके पास अभी चले जाओ।"

"औरों के पास भी जाऊँगा। अभी जाता हूँ, परंतु मैंने जो कुछ कहा है, उसका ध्यान रखना," टीकाराम ने जाते हुए कहा।

फूलरानी हाथ जोड़कर बोली—"तो क्या तब तक देखने भी न पाऊँगी? दूर से ही दिखला दो।"

टीकाराम ठहरकर सोचने लगे। फूलरानी ने कहा—"तुम उससे इतना प्रेम करते थे, अब इतने कठोर क्यों हो गए हो?"

टीकाराम बोले—"दूर से देख लेना, परंतु घर में न आने देना।" और, चले गए।

फूलरानी रोने लगी। कुछ समय तक रोती रही।

सोमवती बहुत मीठे स्वर में बोली—"माजी, मन को कष्ट न दीजिए। दो-एक दिन में सब ठीक हो जायगा। तब तक धर्म का लिहाज तो करना ही पड़ेगा।"

"चुप बेहया।" फूलरानी ने कड़ककर कहा—"तेरा पत्थर का कलेजा न पसीजा।"

(२६)

बाबराम मंगल को उक्त दूसरे मकान में पहुँचाकर आया। उसके चेहरे पर गौरव की श्री थी, मानो कोई बड़ा काम कर आया हो। आते ही बोला—"माजी, दादा के लिये लोटा, गिलास, कटोरी इत्यादि भी तो कुछ दो, और कुछ खाने को थाली में दो। वह खाना, जो तुमने दिया था, भीड़-भाड़ में छू गया था, सो मैंने एक भिखारी को दे दिया।"

"अच्छा किया।" फूलरानी ने चारपाई से उतरकर कहा—

"मैं अभी यह सब सामान तुम्हें देती हूँ, ले जाओ; और अपने दादा से कहना कि थोड़ी देर के लिये तुरंत यहाँ हो जायँ।"

बाबूराम ठिठककर बोला—"परंतु पंडितजी कहते थे कि अभी घर में न आने पावेंगे।"

फूलरानी ने बाबूराम के सिर पर हाथ फेरकर कहा—"बेटा, वह घर में अभी काहे को आवेगा। ज़रा दूर से उससे बातचीत करूँगी। देख-भर लूँगी। परंतु तुम उसे यहाँ भेज दो। और कुछ मत कहना। केवल यह कहना मेरे बेटा, कि माजी ने बुलाया है। उसे खूब खा-पी लेने देना। थोड़ी जगह पेट में रक्खे। बस, थोड़ी-सी जगह। एक लड्डू अपने हाथ से खिलाऊँगी।" फिर अपनी बहू से बहुत कोमल स्वर में बोली—"रानी, तू बड़ी चतुर है। छाँटकर अच्छा-अच्छा पकवान एक थाली में लगा दे, और सब बर्तन बाबूराम के हाथों भेज दे।"

सोमवती आज्ञा-पालन में दत्त-चित्त हुई।

फूलरानी ने कहा—"हरीराम कहाँ गया? यह नन्हा-सा बालक थाली, लोटा और सब बर्तन कैसे ले जायगा?"

"मैं सब ले जाऊँगा। कमज़ोर नहीं हूँ।" बाबूराम बोला—"माजी, हरीराम वहीं भैया के पास बैठा है। वह कहता है कि दिन-रात किसी समय भी लल्ला को न छोड़ूँगा, जिससे कहीं फिर न भाग जायँ।"

फूलरानी गद्गद होकर बोली—"बच्चू बेटा, हरीराम जैसा अच्छा नौकर भाग्य से ही मिलता है। यदि हरी को सुयोग मिल जाता, तो उसी बार भैया को न जाने देता।" फिर हँसकर बोली—"ऐसा चालाक है कि स्टेशन पर फुर्ती के साथ निकल गया।" एक-क्षण बाद ही त्योरी चढ़ाकर सोमवती से बोली—"तू जैसी आलसिन है, कुछ ठिकाना नहीं। कितनी देर हो गई है; बाबू बेचारा एक पैर मे तब से खड़ा है।"

सोमवती ने सब सामान बाबू को दे दिया, और बहुत धीरे से उसके कान में कहा—"अभी एकाध दिन यहाँ न आवें।" और, तुरंत कोठरी में चली गई। बाबूराम ने सुन पाया या न सुन पाया हो, वह बिना कुछ कहे-सुने, सब बोझ लादे, जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता हुआ वहाँ से चला गया।

बहुत थोड़ी देर बाद ही मंगल आ गया। दरवाज़े पर खड़े होकर बोला—"माजी।" पीछे हरीराम और बाबूराम भी थे।

फूलरानी ने कंठ पहचान लिया। दौड़कर आई। दरवाज़े तक नहीं जाने पाई। वह भीतर आकर पैरों से लिपट गया। मा ने तुरंत उठाकर छाती से लगा लिया। मा-बेटे देर तक रोते रहे। सोमवती आँगन के एक कोने में घूँघट डाले खड़ी रही।

मा ने मंगल की ठोड़ी पकड़कर बहुत धीरे से कहा—"तू ने कब से खाना नहीं खाया रे?"

अभी जो तुमने भेजा था मा।" मंगल अपनी पूर्व-सहज मुस्किराहट के साथ बोला।

"झूठ बोलता है।" मा बोली—"इतनी जल्दी खा लिया! ला, तेरा मुँह सूँघूँ। अभी मालूम हो जायगा।" और, उसके पास अपना मुँह बढ़ाया। आँगन से सोमवती के खाँसने की आवाज़ आई, जैसे निवारण कर रही हो।

मंगल ने जरा पीछे हटकर कहा—"अभी नहीं मा। पहले मेरा प्रायश्चित्त हो जाने दो।"

"तू ने ऐसा क्या किया है रे?" मा ने पूछा।

मंगल ने उत्तर दिया—"मैं मुसलमान हो गया हूँ मा। प्रायश्चित्त के बाद फिर ज्यों-का-त्यों हो जाऊँगा। साथ ही मंगल का मुँह उदास हो गया।

फूलरानी ने व्यंग्य के साथ कहा—"बाप तेरा ब्राह्मण, मा तेरी ब्राह्मणी, फिर तू मुसलमान कैसे हो सकता! परंतु तू है सदा का मूर्ख ही।" और, फिर उसे गले लगा लिया। देर तक लगाए रही, और रोती रही।

थोड़ी देर बाद बोली—"मुझे ऊपर कुछ काम है बेटा। मैं आती हूँ। अभी ठहरना।" आँगन में जाकर सोमवती से कहा—"जा री निठुर, जा। वह ग़रीब घंटे-भर से पौर में बैठा है। तू यहाँ लाट साहब बनी खड़ी है। जब चला गया था, तब दिन-रात आँसू बहाया करती थी, अब न-जाने किस डायन ने ठौर पर पाँव जकड़ दिए हैं।" उत्तर

की प्रतीक्षा किए बिना ही फूलरानी ऊपर के खंड में चली गई।

अकेली रह जाने पर सोमवती ने बल के साथ साँस खींची, जैसे किसी बृहत् प्रयत्न या बड़े साहसिक काम की तैयारी करने जा रही हो। उसके बाद घूँघट खींचकर पौर में, जहाँ मंगल बैठा किसी सुकुमार मनोमुग्धकारी मधुर कल्पना में लीन हो रहा था, पहुँची। मंगल मा के बाद ही अनुमान कर रहा था कि अब की बार दूसरी तरह के स्नेह की बारी है।

सोमवती वहाँ आकर पाँच-छ हाथ के फ़ासले पर खड़ी हो गई। उसका चेहरा बहुत उतरा हुआ था। आँखें लाल थीं। शरीर काँप रहा था। वहीं खड़े होकर सोमवती ने नमस्कार किया। उसके आते ही हरीराम बाहर हो गया। बाबूराम उसके साथ चला गया।

मंगल ने इधर-उधर देखा। कोई पास न था। मुस्किराकर बोला—"यह ठाट! इतनी दूर से वार!"

सोमवती ने आँखें नीची कर लीं। ज़ोर से साँस चलने लगी

मंगल बोला—"आपकी यह कल्पना है कि मैं दौड़कर अभी लिपट जाऊँगा। करता तो ऐसा ही और जी भी चाहता है, परंतु दो-एक दिन ठहरना पड़ेगा।"

"जी हाँ।" सोमवती ने बिना सिर उठाए हुए काँपकर कहा।

"जी हाँ!" मंगल व्यंग्य के साथ बोला—"आपकी भाषा तो बड़ी परिमार्जित हो गई है। परंतु इस नखरे का भी

एक मील है।" सोमवती की आँखों से गालों पर होते हुए आँसू टप-टप पृथ्वी पर गिरने लगे।

मंगल चौंककर उठ बैठा, विनीत स्वर में बोला—"लो, रोओ मत। मैं आ गया हूँ। अब कहीं न जाऊँगा। जाना भी चाहूँगा, तो हरीराम दम ले लेगा, जाने न देगा।" खड़े हो जाने पर मंगल ने सोचा कि सोमवती आगे बढ़ेगी, परंतु वह वहीं, मूर्ति की तरह, जमी खड़ी रही।

मंगल ने ज़रा-सा आगे बढ़कर कहा—"अब की बार अगर भागा, तो वैसी अमूल्य चिट्ठी तुम काहे को भेजने चलीं? तुम्हारी वह चिट्ठी यदि उसी समय पढ़ लेता, तो यह सब नौबत क्यों आती।"

सोमवती ने एक क्षण के लिये आँख उठाकर कहा—"बैठ जाइए, कष्ट मत कीजिए।"

वह बोला—"तब मुझी को मान मनाना पड़ेगा।" और उसे आलिंगन करने के लिये आगे बढ़ा।

सोमवती पीछे हट गई। सिर उठाकर बोली—"मैं आपके हाथ जोड़ती हूँ, पैरों पड़ती हूँ। कुछ दिन ठहरिए। अपने पिता की आज्ञा का पालन कीजिए।"

मंगल एक डग पीछे हट गया। जैसे पैर में नुकीला काँटा चुभ गया हो! हाथों की मुट्ठी बाँधकर बोला—"मैं मुसलमान हूँ, क्या यह कारण है?"

"जी हाँ।" सोमवती दृढ़ता के साथ बोली—"परंतु आपके प्रायश्चित्त में बहुत विलंब नहीं।"

"ओहो! यह बात है! धर्म की इतनी बड़ी बाधा! मेरी मा को देखा? तुम उनके पैरों की धूल के बराबर भी नहीं हो! ओह! इतना घमंड!" मंगल ने विकृत स्वर में कहा।

"वह मा हैं। उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता।" सोमवती ने अव्याकुल स्वर में उत्तर दिया।

"और, तुम मेरी स्त्री हो—ओफ़्! ऐसी स्त्री!"

"मैं आपकी स्त्री नहीं हूँ।" सोमवती बोली, और उसके नेत्रों से एक प्रचंड ज्वाला-सी निकली।

"मेरी स्त्री नहीं है!" मंगल ने गरजकर कहा—"हाँ, क्या मैं यही सुनने के लिये मलाबार से आया हूँ?" आधे क्षण बाद कड़ककर बोला—"बोल राक्षसी, तब तू कौन है? तू क्या हो गई है?"

"आपकी स्त्री नहीं, आपकी धर्म-पत्नी हूँ। ब्राह्मण की कन्या और ब्राह्मण की धर्म-पत्नी। शांत होकर बैठिए, और धैर्य धरिए।" सोमवती ने गंभीर, परंतु शांत स्वर में कहा, और कहने के साथ ही उसके मुख के चारो ओर तेज का एक मंडल-सा खिंच गया।

मंगल भरभराकर चारपाई पर धसक गया। कुछ गोलमाल की आशंका से फूलरानी वहाँ आ गई। सोमवती घूँघट मार-कर आँगन में हट गई।

फूलरानी चिल्लाकर बोली—"क्यों री कलमुँही, एक मीठी बात भी न बोली गई! बेटा, यह क्या कहती थी?"

मंगल ने बहुत रूखे, किंतु धीरे स्वर में कहा—"मुझे मेरा दुर्भाग्य यहाँ घसीट लाया था।"

(३०)

टीकाराम को नवलविहारी की बहुत खोज नहीं लगानी पड़ी। जैसे ही उन्होंने दफ़्तर में सुना कि मंगल मलाबार से पकड़कर लाया गया है, और अपने पिता की जमानत पर उन्हीं के सिपुर्द कर दिया गया है, वैसे ही उन्होंने आतुरता के साथ दफ़्तर का काम निबटाया—कुछ किया, कुछ टाला। दफ़्तर क बड़े बाबू से छुट्टी लेकर एक घंटा पहले ही चल दिए।

हाथ-मुँह धोकर घर से चले कि टीकाराम मिल गए।

टीकाराम ने कहा—"मैं बड़े कष्ट में हूँ पंडितजी! उधर जाता हूँ, तो खाई; इधर आता हूँ, तो कुआँ। आपने तो सब सुना ही होगा।"

नवलविहारी गंभीर होकर बोले—"जब से सुना, हर्ष और विषाद में उलझ गया हूँ। मैंने सुना है कि उसने धर्म बदल दिया है। खबर गलत मालूम होती है।"

आह खींचकर टीकाराम बोले—"पंडितजी, बुरे समाचार बहुत कम झूठे निकलते हैं। ऐसा परम पवित्र वैष्णव-कुल और ऐसी दुर्घटना! क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। आपकी सम्मति के लिये पास आया हूँ।"

"मैं भी बड़े सोच-विचार में हूँ।" पंडित नवलविहारी ने

भौंहें ऊपर चढ़ाकर कहा—"हिंदू-जाति को ह्रास से तो बचाना ही पड़ेगा।"

"तभी तो आपकी शरण ली है।" टीकाराम बोले।

"क्या वह राज़ी-खुशी मुसलमान हुआ है?"

"अभी ठीक तौर से कुछ नहीं पूछ पाया। चित्त को इतना क्लेश हुआ कि कुछ बातचीत न कर पाई। अभी तो मैंने उसे एक दूसरे मकान में ठहरा दिया है, और कह दिया है कि जब तक प्रायश्चित्त न हो जाय, और स्वजातीय लोग स्वीकृति न दे दें, तब तक उससे किसी प्रकार का संपर्क न रक्खा जाय।"

"आपने बहुत उचित किया।" नवलविहारी ने कहा—"आप स्वयं शास्त्रविद् हैं। शास्त्र में प्रायश्चित्त है या नहीं?"

"है।" टीकाराम ने उत्तर दिया—"प्रायश्चित्त बिना तो वह किसी भाँति अंगीकार नहीं किया जा सकता, चाहे मुझे लड़के से हाथ ही क्यों न धोना पड़े।"

नवलविहारी मुस्किराकर बोले—"आप-सदृश निष्ठावान् पुरुषों से इसी तरह की आशा की जाती है।" एक क्षण बाद कहा"—स्वजातीय और कुछ परजातीय लोगों से भी सलाह करनी चाहिए। नई बात है। अपने यहाँ कभी ऐसा नहीं हुआ, इसलिये बातचीत में सबको शामिल कर लेना चाहिए। ठाकुर हेतसिंह को भी बुलाए लेते हैं। लखपत को भी साथ ले लेंगे। सब लोग आप ही के यहाँ बैठक करेंगे।

सब बातें लड़के से वहीं पूछेंगे। परंतु आश्चर्य है कि आपने अभी तक कुछ नहीं पूछ पाया।"

इसके बाद टीकाराम और दूसरे व्यक्तियों को लेते हुए अपने घर आए। लोगों को जोड़ने-बटोरने में बहुत समय नहीं लगा। मलाबार में क्या हुआ, मंगल कैसे मुसलमान हुआ, किस तरह पकड़कर लाया गया, इत्यादि घटना बहुत से मनुष्यों को शीघ्र एकत्र करने के लिये काफ़ी मनोरंजक कहानी थी, इसलिये लोग-बाग काम छोड़कर भी आ गए। टीकाराम की व्यथा को उन लोगों ने यथावत् समझ पाया या नहीं, इसका बतलाना कठिन है। परंतु सबके मुँह से टीकाराम के लिये सहानुभूति के शब्द प्रचुरता के साथ निकले थे, इसमें कोई संशय नहीं मालूम होता।

जिस समय जाति और परजातिवालों की यह भीड़ टीकाराम के घर पहुँची, दरवाज़े के बाहर हरीराम और बाबूराम मिले।

सब लोग बाहरवाली बैठक में बैठ गए। बाबूराम शंकित-सा खड़ा था। हरीराम ख़ातिरदारी में संलग्न हुआ। पान लाकर रख दिए गए।

टीकाराम ने हरीराम से पूछा—"तुम उसे उस मकान में अकेला छोड़ आए हो, क्या सो गया है? बाबूराम भी चला आया है, परंतु कुछ हर्ज नहीं। अब भागकर कहीं न जायगा।"

मकान में अकेला छोड़ आने की बात उन्होंने स्वाभाव-विरुद्ध दंभ के साथ कही, और उपस्थित जनता में कुछ प्रमुख लोगों की ओर एक क्षण के लिये देखा। उन्हें विश्वास हो गया कि मेरी बात साख हो गई।

नवलविहारी बोले—"रात को सो लेंगे। यदि सोते न हों, तो ठीक ही है, और यदि सोते भी हों, तो जगवा लीजिए। सोने के लिये तो रात पड़ी है।"

"वह तो यहीं हैं।" हरीराम ने उत्साह के साथ कहा। बाबूराम ने हरीराम का हाथ दबाया। वह जरा असंतुष्ट दृष्टि से उस बालक की ओर देखने लगा। उसकी समझ में बाबूराम की क्रिया न आई। परंतु यह सब व्यापार उपस्थित सज्जनों की समझ में आ गया।

नवलविहारी ने चकित होकर कहा—'घर के भीतर! आप तो कहते थे कि अलग मकान में ठहरा दिया है।"

टीकाराम के उत्तर देने के पहले ही हरीराम ने ऊँचे स्वर में कहा—"अलग तो उनको ठहराया ही है। माजी ने अभी बुलाया था, सो चले आए। पर उनको अब अलग न रखना चाहिए। वह उस मकान में उदास रहते हैं।"

टीकाराम गरम होकर बोले—"जा भीतर। बुला उसको।"

हरीराम भीतर गया। टीकाराम माथे पर हाथ फेरकर बोले—"तक़दीर को क्या कहूँ। अब आप ही लोग जिस तरह

हेतसिंह बोले—"भाई, छिपाने से काम नहीं चलेगा। हम सब लोग यहाँ तुम्हारी भलाई के लिये इकट्ठे हुए हैं, पर यदि तुम कुछ बतलाओगे ही नहीं, तो हम लोग यहाँ से चुपचाप चले जाने के सिवा और कर ही क्या सकते हैं?"

हरीराम थोड़ी दूर पर खड़ा ध्यान-पूर्वक सब बातें सुन रहा था। उसकी समझ में उपस्थित समस्या आई हो या न आई हो, परंतु उसे अपने बनाए पानों का खयाल अवश्य था। हाथ बाँधकर बोला—"पान सूखे जाते हैं। देर से थाली में रक्खे हैं।"

टीकाराम ने भी तुरंत कहा—"जब तक वह कुछ कहता है, तब तक पान खाइए न?"

किसी ने पान की ओर आँख न फेरी। एक दूसरे का मुँह ताकने लगे।

नवलबिहारी ने अपने को अग्रणी समझकर कहा—"अभी हम लोग आपके यहाँ का कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकते। जब तक प्रायश्चित्त न हो जाय, कोई पदार्थ ग्राह्य नहीं।"

"मेरा प्रायश्चित्त!" टीकाराम ने आश्चर्य के साथ कहा—"मैंने क्या किया है?"

"नहीं, आप तो निर्मल गंगाजल की तरह शुद्ध हैं।" लखपत बोला—"परंतु अभी मंगल का कुछ भी हाल नहीं मालूम हुआ। आपके भीतर से वह आ रहे हैं। यद्यपि जैसा आप कहते हैं, आपने उनके लिये एक अलग मकान ले दिया

है, और हम लोग आपकी बात का विश्वास करते हैं, परंतु आप ही सोच लीजिए। आँखों देखी मक्खी मुँह में नहीं डाली जाती।" फिर हाथ जोड़कर कहा—"हमें ढिठाई के लिये क्षमा कीजिएगा। मजबूर होकर कहना पड़ा।"

"लड़के की बात सुनी नहीं, बाप को दोष देने लगे।" हेतसिंह ने कहा।

रामसहाय बोले—"वह तो इतना झेंप रहा है कि मुँह से बात भी नहीं निकलती। जान पड़ता है, किसी मुसलमान-स्त्री की मुहब्बत ने इसे तबाह किया है। वैसे बड़ा वाचाल था, अब न-जाने क्यों चुप है।"

मंगल की आँखों के सामने रहमतुल्ला की पत्नी और उसके बालकों का चित्र खिंच गया। काँप गया। तुरंत सिर ऊँचा करके बोला—"मैं धर्म-भ्रष्ट हूँ, पतित हूँ, नरक का कीड़ा हूँ, परंतु आप मेरे माता-पिता को क्यों सानते हैं?"

रामसहाय मंगल के रोष से ज़रा भी भयभीत न हुए। हँसकर बोले—"यह हमारे सवाल का जवाब है!"

लखपत भी मुस्किराया।

हेतसिंह ने कहा—"आप ऐसे-ऐसे व्यंग्य उस लड़के पर छोड़ रहे हैं, वह बेचारा अपनी बात कैसे कहे।" मंगल के कंधे पर हाथ धरकर बोले—"बेटा, तुम सब बात सच्ची-सच्ची कहो। कोई बात छिपाना नहीं।"

नवलविहारी ने कहा—"छिपाने से छिपेगी नहीं। नाहक़ झूठे बनोगे। 'उघरहिं अंत न होय निबाहू।'"

टीकाराम क्षीण स्वर में बोले—"कहो बेटा।"

मंगल ने आदि से अंत तक संपूर्ण घटना विस्तार के साथ कह सुनाई। केवल अपनी पत्नी द्वारा प्रेषित पत्रिका का ज़िकर नहीं किया।

सब श्रोताओं के मन में कुछ-न-कुछ टीका-टिप्पणी करने की इच्छा उत्पन्न हुई; परंतु पहले कौन अपना मंतव्य प्रकट करे, यह उलझन थी।

हरीराम चुपचाप रो रहा था। बाबूराम भी आँसू बहा रहा था, शायद हरीराम की देखादेखी। टीकाराम मन ही मन खिलाफ़त-आंदोलन को शाप पर शाप दे रहे थे।

सबसे पहले रामसहाय ने हँसकर कहा—"क़िस्सा तो बड़ा मजेदार है। मोपले भी क्या ग़ज़ब के पाजी होते हैं।"

"क़िस्सा कहिए, चाहे कुछ और, परंतु लड़के ने घटना ज्यों-की-त्यों सुनाई है।" हेतसिंह ने कहा।

लखपत बोला—"मुसलमान चाहे राज़ी से हुए हों, चाहे ग़ैर-राज़ी, पर अब तो सब पंचों को इनके लिये कुछ-न-कुछ करना ही पड़ेगा। ज्योतिषीजी के विचारों का कुछ दोष नहीं। भाग्य खोटा होने से ही सब हुआ है।"

हेतसिंह को लखपत से कुछ स्वाभाविक चिढ़ थी। बोले—

"शास्त्र की चर्चा लाला, ब्राह्मणों के लिये छोड़ो। यहाँ बहुत-से पंडित बैठे हैं। इन लोगों को भी कुछ कहने दो।"

लखपत चार अंगुल पीछे खिसककर बोला—"मुझे क्या करना है। यदि मैंने कोई बात अनुचित कही हो, तो क्षमा कीजिए।" फिर अपने आप प्रकट रूप से कहने लगा—"राम-राम, कैसा घोर युग है। नेकी करते बदी खड़ी हो जाती है।"

इस भाषण पर ध्यान न देकर नवलविहारी ने पूछने के ढंग पर कहा—"मंगल ने जो कुछ कहा है, यदि सत्य है, और यदि शास्त्रों में इसका यथोचित्त प्रायश्चित है, और यदि जाति के सब मुखिया लोग स्वीकृति दें, और यदि ये लोग यथाविधि शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त करें, तो कुछ हर्ज तो नहीं मालूम पड़ता।"

रामसहाय बोले—"क्यों जी मंगल, तुमने और किस-किसके हाथ का बनाया या छुआ हुआ भोजन-पान किया है?"

उसने उत्तर दिया—"किसी के भी हाथ का नहीं।"

"मसजिद में तुमसे बिलकुल प्रतिवाद करते न बना! यहाँ तो व्याख्यानों की धूम के मारे धरती फाड़ा करते थे।" रामसहाय ने हँसते-हँसते कहा।

मंगल ने आकाश की ओर देखकर एक लंबी साँस ली। टीकाराम, जो देर से चुपचाप बैठे थे, बोले—"यह नन्हा-सा बालक वहाँ अकेला क्या कर सकता था।"

"आप लोगों में से कितनों की हिम्मत वहाँ पड़ती?" हरीराम ने सहसा कर्कश स्वर में प्रश्न किया।

टीकाराम और मंगल ने एक साथ कहा—"जा यहाँ से।"

हरीराम कमरे के बाहर जाकर एक ओर खड़ा हो गया।

नवलबिहारी बोले—" हम लोग साहब, यहाँ नौकर की गालियाँ तो खाने आए नहीं हैं।"

टीकाराम ने हाथ जोड़कर कहा—"आप समर्थ हैं। क्षमा कीजिए। पुराना, बुड्ढा आदमी है, अक़्ल बिगड़ गई है। मैं उसे दंड दूँगा।"

नवलबिहारी हिलने लगे, जैसे मन-ही-मन किसी मंत्र का पाठ कर रहे हों।

बिरादरी के एक सज्जन ने कहा—"ख़ैर, अब प्रायश्चित्त की बात तय कर लीजिए। दिन निश्चित हो जाय।"

रामसहाय ने भी उसी बात को दुहराकर कहा—"पं० नवलबिहारी इन विधानों को ख़ूब जानते हैं। मैं तो केवल रोग और रोगियों से परिचित हूँ। वही बतलावेंगे।"

गौरव और महत्त्व का आसन ग्रहण करने का सुयोग पाकर नवलबिहारी का मन कोप-मुक्त हुआ। मुस्किराकर तो नहीं, परंतु शांति के साथ बोले—"उपवास, गंगा-स्नान, गोदान, हवन, पंचगव्य, सत्यनारायण की कथा, ब्राह्मण-भोजन, जाति-भोज इत्यादि यथाविति करने से कलंक-मुक्त हो सकते हैं। टीकारामजी क्षमा करें, तो एक बात और कहूँ।

क्षमा न भी करें, तो भी कहनी पड़ेगी, क्योंकि धर्म की बात कहने में बुराई-भलाई की परवा नहीं करनी चाहिए।"

वह कहते ही चले जाते, परंतु टीकाराम ने टोककर बड़ी नम्रता के साथ निवेदन किया—"आपने किंचित् भी अनुचित नहीं कहा। आप तो समदर्शी और समर्थ हैं।"

नवलविहारी बोले—"आपके घर-भर को प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।"

टीकाराम ने उमंग के साथ कहा—"यह तो बिलकुल ठीक है। मुझे जरा भी संकोच नहीं। प्रायश्चित्त मन और शरीर के समस्त मैल धो डालता है। मुझे सहर्ष स्वीकार है।"

"पंचगव्य भी पीना पड़ेगा?" मंगल ने नवलविहारी से अविचलित भाव से पूछा।

"हाँ, अवश्य।" नवलविहारी का उत्तर था।

मंगल बोला—"मैं और सब करूँगा, पंचगव्य नहीं पिऊँगा।"

"तब प्रायश्चित्त में और है ही क्या?" लखपत ने कहा।

"बिना पंचगव्य के प्रायश्चित्त सूना और अधूरा रह जायगा।" नवलविहारी ने भी कहा।

"मैं सब करूँगा।" प्रखर स्वर में टीकाराम बोले।

रामसहाय ने कहा—"ठीक है जी। अकेला यह लड़का पंचगव्य न पिएगा, तो कुछ हानि नहीं।"

हेतसिंह बोले—"उसके बदले मा-बाप तो ग्रहण करेंगे। किसी ने किया।"

"वाह ! यह भी कोई बात है ?" नवलविहारी जरा गरम होकर बोले—"जिसके लिये जो कुछ नियुक्त है, वही उसे करता है ; दूसरा नायबी नहीं कर सकता।"

"वाह महाराज !" हेतसिंह ने कहा—"ऐसा होने लगे, तो आप लोगों को आटा-दाल का भाव मालूम हो जाय। ये सहस्रों पाठ-पूजन जो दूसरों के लिये ब्राह्मण लोग करते हैं, सो क्या ? उसी तरह यह भी संभव है।"

लखपत ने अपना अज्ञान प्रकट करते हुए कहा—"मैं तो शास्त्र से बिलकुल कोरा हूँ। शायद हमारे ठाकुर साहब पारंगत हैं। परंतु इतना जोर के साथ कह सकता हूँ कि धर्म में कुतर्क करने का किसी को अधिकार नहीं।"

"किसने कुतर्क किया है जी ?" हेतसिंह ने लाल होकर पूछा।

उसने उत्तर दिया—"आपने।" फिर जरा चिल्लाकर बोला—"मेरे लिये तो जीना मुहाल कर दिया है। जरा-जरा-सी बात पर आप बिगड़ पड़ते हैं। जब देखो, तब आपे से बाहर हो जाते हैं।"

हेतसिंह की तबियत ने बहुत चाहा कि एक घूँसा जमा दें, परंतु दाँत पीसकर ही रह गए। एक क्षण बाद बोले—"भाई, यह तो अपनी-अपनी सम्मति है। यदि मंगल पंचगव्य न पिए और प्रायश्चित्त का अन्य अंग पूरा कर दे, तो मैं तो साथ देने को तैयार हूँ। और, मेरी जातिवाले भी साथ देंगे।"

रामसहाय ने कहा—"मुझे भी इनकार नहीं।"

कई ब्राह्मणों ने भी यही बात कही।

नवलविहारी उठ पड़े। बोले—"मुझे स्वीकार नहीं। जिसे करना हो, करे।"

"मैं भी घर जाता हूँ।" लखपत ने कहा।

टीकाराम ने खड़े होकर, हाथ जोड़कर कहा—"सब लोग विराजें। बात तय हो जाय, तब यहाँ से पधारें।"

परंतु नवलविहारी न ठहरे। उनके भीतर इतना क्रोध पहले शायद किसी ने न देखा होगा।

रामसहाय भी उनके पीछे-पीछे गए। कहते गए—"मैं इन्हें मनाकर लाता हूँ। आप लोग अपना काम करते जाइए। बात तो तय हो ही गई है। मुसलमान से हिंदू हो रहा है। इसमें किसी को आक्षेप नहीं हो सकता—और फिर, वह तो शुद्ध ब्राह्मण-संतान है। मैं आप लोगों के साथ हूँ।" लखपत भी चला गया। और लोग बैठे रहे।

हेतसिंह ने कहा—"कुछ लोगों की नाक पर ही क्रोध रक्खा रहता है। न-मालूम अपने को किस मर्ज़ की दवा समझते हैं।"

उपस्थित लोगों में से किसी ने हेतसिंह के मंतव्य का सह-योग न किया। चुप बैठे रहे।

मंगल बोला—"जिस दिन से मेरे लिये प्रायश्चित्त आरंभ करने की आज्ञा दी जाय, मैं तत्परता के साथ करूँगा।"

टीकाराम ने उपस्थित लोगों से कहा—"यह लड़का अभी

हाल में बहुत बीमार रहा है। कुछ दिनों बाद के लिये रु
जाय, तो कैसा ?"

मंगल झट बोला—"नहीं दादाजी, मैं कल से ही प्रा
कर दूँगा। आप आवश्यक सामग्री उसी मकान में
दीजिए। मैं अब घर पर नहीं आऊँगा।"

ऐंचकतानी आँखोंवाले एक ब्राह्मण वहाँ बैठे थे, बोले
"हकीम रामसहायजी साथ देने का वचन दे गए हैं, इसलि
हम लोग भी सब ज्योतिषीजी का साथ देंगे। पं० नवलबिह
भी विद्वान् और समझदार पुरुष हैं। वह खिलाफ़
रहेंगे। परंतु मेरी सम्मति में मंगल से पक्के काग़ज़
यह बात लिखवा लेनी चाहिए कि आइंदा ऐसा काम
करेंगे।"

"मुझसे जो कहिए, लिखने को भी तैयार हूँ।" टीकाराम
टूटते हुए स्वर में कहा।

हेतसिंह बोले—"उस बेचारे ने जान-बूझकर तो कोई अ
राध किया नहीं।"

उक्त ऐंचकताने ने कहा—"न सही, परंतु लिख देने में व
आकाश टूट पड़ेगा ?"

और ब्राह्मणों ने प्रतिवाद किया। निश्चय हुआ, लिखा-प
की इस समय कोई ज़रूरत नहीं।

घावूराम बड़ी देर से कुछ कहने के लिये उकता रहा थ
परंतु अनुकूल अवसर न समझकर चुप रह-रह जाता; थ

अब बोला—"हमारी संपूर्ण सभा ज्योतिषी दादा
देगी। निश्चय जानिए।"

"कौन-सी सभा जी?" टीकाराम ने पूछा।

"जिसके मंत्री पीताराम चौधरी हैं—वही पीताराम, जो बहुत जल्दी धनुष-यज्ञ की लीला धूमधाम के साथ करानेवाले हैं।"

(३२)

सब लोगों के चले जाने पर हरीराम के साथ मंगल दूसरे मकान में चला गया। प्रसन्न-चित्त टीकाराम फूलरानी के पास पहुँचे। उन्हें आशा न थी कि समस्या इतनी निर्विघ्नता और शीघ्रता के साथ सुलझ जायगी। नवलविहारी का रूठकर चला जाना वह एक साधारण घटना समझते थे, और उनका विश्वास था कि सहज ही मना लेंगे।

फूलरानी से टीकाराम बोले—"तुम लोगों के भाग्य से सब बात आसान हुई जाती है।"

"मुझे इस बात का रंज है कि लल्ला को नाहक़ यहाँ बुला भेजा। हरीराम कहता था कि तुम्हारे मिलनेवालों को उसका यहाँ इस समय आना अच्छा नहीं लगा।"

"तुम्हारी उतावली ने सब काम मिट्टी कर दिया होता, परंतु हेतसिंह इत्यादि भलेमानसों ने बड़ी सहायता की।"

"मैं तो खड़ी-खड़ी सब सुन रही थी। तुमसे पूछती हूँ, मंगल का इस मामले में क्या दोष है?"

"वह घर से भागा क्यों?"

"तुम्हीं ने तो भगाया था।"

"मैंने ?"

"अरे तुमने न सही, उस नवलविहारी ने तो जरूर ही मेरे बच्चे को निकलवाया, जिसकी तुम लोग इतनी आव-भगत करते हो।"

"मैंने ही भगाया सही। यह सब काज ठीक तौर से हो ले, फिर मैं तो किसी तीर्थ का सेवन करूँगा। अब घर में नहीं रहूँगा।"

"और, मैं तो इस बात के सुनने को यहाँ बैठी ही रहूँगी कि हजार प्रायश्चित्त हो गया, पर बाप तक ने लड़के का साथ नहीं दिया।"

टीकाराम झल्लाकर बोले—"असल में यह लड़का तुम्हारा ही खराब किया हुआ है।"

फूलरानी ने कहा—"चलो, ऐसा ही सही। जिसमें नवल-विहारी का जी शांत हो, वही करो।"

टीकाराम को गुस्सा आ गया। चुपचाप बाहर चले गए।

फूलरानी ने अपनी बहू को बुलाया। सोमवती मुँह डाले आ गई।

फूलरानी ने स्नेह के साथ कहा—"रानी, तूने कुछ खाया है कि नहीं ?"

"खाए लेती हूँ।" उत्तर दिया—"तुमने तो माजी, अभी तक जल भी नहीं पिया।"

"अभी खाए-पिए लेते हैं।" मंगल की मा ने कहा। फिर उसे अपने पास बिठलाकर बोली—"तूने लल्ला से ऐसा क्या कहा था, जिससे वह इतना चिल्ला पड़ा?"

बात टालकर सोमवती बोली—"बैठक में लोगों ने क्या निश्चय किया है माजी?"

"हम सबको प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। एक सप्ताह का विधान है। लल्ला ने स्वीकार कर लिया है। परंतु पंचगव्य पान करना उसने स्वीकार नहीं किया।" फूलरानी ने उत्तर दिया।

"तुम पंचगव्य ग्रहण करोगी माजी?" सोमवती ने पूछा।

"क्यों? उसमें क्या है? पवित्र गोबर और पवित्र गो-सूत्र से दोष मुक्त हो जाते हैं।"

सोमवती चुप रही।

सास ने कहा—"क्या तू पंचगव्य ग्रहण न करेगी? न करना चाहे, तो न करना। हम दोनो आदमी तो करेंगे।"

"बिरादरीवाले इतने से संतुष्ट हो जायँगे?" सोमवती ने प्रश्न किया।

मंगल की मा ने उत्तर दिया—"उन्हीं के संतोष के लिये तो हम लोग यह क्या, और जो कुछ कहें, करने को तैयार हैं।"

"जातिवाले बड़े निष्ठुर होते हैं माजी।" सोमवती ने कहा—"इन पर कभी ऐसा वज्र टूटे, तो जान पड़े।"

फूलरानी बोली—"तब तू पूरे प्रायश्चित्त में शामिल न होगी?"

"अवश्य होऊँगी।" सोमवती ने जवाब दिया।

(३३)

रामसहाय वैद्य ने पं० नवलविहारी को समझाया-बुझाया या नहीं, और वह उनके समझाने में आए या नहीं, इसका तो पता नहीं, परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि मंगल के लिये प्रायश्चित्त का विधान-निर्णय सुनकर लखपत की आत्मा को शांति नहीं मिली।

वह थोड़ी देर बाद नवलविहारी के पास पहुँचा। भोजन से फ़ारिग़ होकर बैठे ही थे कि लखपत आया। बातचीत होने लगी।

लखपत ने कहा—"पंडितजी, शास्त्रों में प्रायश्चित्त का ऐसा ही तरीक़ा लिखा है, जैसा आज तय किया गया है?"

"आज तय हुआ ही क्या है?" नवलविहारी बड़ी छान-बीन के लहज़े में बोले—"सिर्फ़ कुछ चर्चा प्रायश्चित्त के विषय में हुई है। धर्म-भ्रष्ट मंगल क्या सहज ही जाति में मिला लिया जायगा? मुझे तो अपने सभासदों की कुशल-कामना अभीष्ट है, और मैं यह नहीं चाहता कि अपने लोगों की अवनति हो, नहीं तो वहाँ बहुत कुछ कहता।"

"पंडितजी, शास्त्रों में क्या इस तरह के प्रायश्चित्त का विधान है?"

"शास्त्र तो हैं कल्पवृक्ष। उनकी बात जाने दो। लोकाचार पहले देखना पड़ता है।"

"शास्त्र तो अनादि हैं। मुसलमान-मत अभी हाल का है। शास्त्रों में मुसलमानों को हिंदू बनाने की व्यवस्था नहीं मिल सकती।"

"कदापि नहीं मिलेगी।"

थोड़ी देर चुप रहने के बाद लखपत ने फिर कहा—"मंगल हजार प्रायश्चित्त कर ले, परंतु हमारी वैश्य-जाति में तो चलावा अभी चलेगा नहीं। हाँ, जब हम लोग देख लेंगे कि आप लोगों ने उस कुटुंब को ग्रहण कर लिया है, तब हम लोगों को फिर उज्र ही क्या रहेगा ? आप ब्राह्मण लोग यदि उजाले में ले चलेंगे, तो हम लोग आपके पीछे-पीछे हैं, और यदि आप लोग हम लोगों को अँधेरे गड्ढे में ढकेलेंगे, तो उससे भी इनकार नहीं कर सकते।"

नवलविहारी ने ज़रा चिंतित होकर कहा—"सब ब्राह्मणों की तो नहीं कह सकता, परंतु मुझ-सरीखे लोग तो पैर फूक-फूककर ही रखते हैं।"

"पं० रामसहायजी किस ओर रुख करेंगे ?" भयभीत लखपत ने पूछा। "उनकी प्रकृति हाँ में हाँ मिलाने की तो है ही।"

नवलविहारी ने उत्तर दिया—"परंतु अंत में वह हम लोगों का साथ नहीं छोड़ सकते। केवल टीकाराम के सगे-संबंधियों के विषय में संदेह होता है।"

इसी समय टीकाराम भी आ गए। उनको अपने मन से

ही वहाँ का वातावरण अनुकूल न जान पड़ा। लखपत उठ खड़ा हुआ। बोला—"पंडितजी, विलंब हो रहा है, अब जाता हूँ।"

टीकाराम ने आग्रह के साथ कहा—"बैठो भैया, बैठो। मेरे आते ही चल पड़े, यह कौन-सी बात है?"

लखपत अनिच्छा से बैठ गया।

टीकाराम ने खाँस-खूँसकर कहा—"मैं आपकी अनुमति बिना कुछ नहीं किया चाहता। जो व्यवस्था आप देंगे, उसे शिरोधार्य करूँगा।"

लखपत उपस्थित विषय में अरुचि दिखलाने लगा, परंतु कान उसी ओर लगे थे।

नवलविहारी ने मुस्किराकर कहा—"आप स्वयं पंडित हैं, जौन-सा प्रायश्चित्त उपयुक्त समझें, उसी का विधान करें। यदि आपको कुछ शंका जान पड़े, तो बाहर के किसी अच्छे पंडित की सम्मति ले लें।"

टीकाराम का गला सूखा हुआ था। बोले—"मेरी समझ में आप ही ने जो उपवास, हवन, सत्यनारायण की कथा इत्यादि की व्यवस्था अभी दी थी, वही सबसे अधिक उपयुक्त है।"

"हाँ, मैंने, कहा तो अवश्य था," नवलविहारी बोले—"परंतु मेरा वक्तव्य प्रायश्चित्तों के विषय में साधारण रूप से था। जिस अवस्था में मंगल है, उसके संबंध में मैंने विशेपतः कुछ नहीं कहा था। बात पूरी नहीं होने पाई थी कि

तसिंह अपनी प्रकृति के अनुरूप उलझ पड़े, फिर कुछ निर्णय न हो सका।"

टीकाराम का गला और भी सूख गया। भर्राए हुए स्वर में बोले—"चलते-चलते वैद्यजी तो कह गए थे कि सब तय हो गया।"

"हाँ तब ठीक है।" नवलविहारी बोले—"मैं उनसे और पूछ लूँगा।"

टीकाराम को प्यास लगी थी। पीने के लिये जल माँगा।

"अभी लाता हूँ।" कहकर नवलविहारी भीतर जल लाने के लिये चले गए।

टीकाराम ने लखपत से कहा—"आपके भी तो सामने ही निर्णय हुआ है। आप उस समय निकट ही बैठे थे।"

लखपत ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"महाराज, हम लोग कुपढ़ आदमी धर्म की बारीकियों को नहीं समझते। आप सब ब्राह्मण लोग जो कुछ करेंगे, हमारे सिर-माथे है। हमारी गिनती ही किसमें है?"

कुछ क्षण बाद नवलविहारी पानी का लोटा एक हाथ में और मिट्टी का एक ठीकरा दूसरे हाथ में लेकर आ गए।

ठीकरा टीकाराम के सामने करके बोले—"लीजिए।" टीकाराम के चोटी से लेकर एड़ी तक मानो आग लग गई। कुल्हड़ के लिये हाथ न बढ़ाया। बहुत क्षीण स्वर में कहा—"वैसे ही लोटे से पिला दीजिए।"

नवलविहारी ने कहा—"नहीं, कुल्हड़ से पी लीजिए।"

लखपत ने भी कहा—"पी लीजिए, पी लीजिए पंडितजी!"

टीकाराम एक क्षण चुप रहे। परंतु प्यास के मारे कलेजा जला जा रहा था, और वह नवलविहारी के कुल्हड़ का अपमान नहीं करना चाहते थे। ले लिया, और पी लिया।

जब चित्त कुछ शांत हुआ, बोले—"यदि आप उस प्रायश्चित्त को ठीक नहीं समझते, तो जौन-सा प्रायश्चित्त आप कहें, कराया जायगा।"

"आप तो स्वयं पंडित हैं।" नवलविहारी ने कहा—"जब मुसलमान संसार में थे ही नहीं, तब इस संबंध की व्यवस्था तो शास्त्रों में मिल ही नहीं सकती; परंतु हाँ, धर्म-भ्रष्टों के लिये कुछ-न-कुछ विधान नियुक्त है। आप जैसा उचित समझें, करें।"

टीकाराम ने इस मंतव्य में स्वीकृति की कल्पना करके कहा—"आप बड़े उदार हैं। मैं आप ही का आश्रय लिए हूँ। प्रायश्चित्त कल से ही आरंभ कर दिया जायगा। कभी-कभी आप भी बीच-बीच में देख लिया करिए, और अपने सत्परामर्श से मुझे कृतकृत्य होते रहने दीजिए।"

नवलविहारी ने कहा—"हाँ, हाँ, ठीक है।"

(३४)

पीताराम की सभावाली धनुष-यज्ञ-लीला की तैयारी वेग से होने लगी. और नवलविहारी की सभा की लीला का

आयोजन शिथिल होने लगा। नवलविहारी की सभा के लोग मंगल के प्रायश्चित्त और मलावार की विचित्र घटनाओं को लेकर अपनी फ़ुरसत का वक्त काटने लगे। क़रीब-क़रीब सब लोगों को यह खटक रहा था कि बात अनहोनी और नई है। धर्म-भ्रष्ट चाहे जैसे हुआ हो, पर हुआ ही क्यों ? हो गया, तो धर्म को फिर भले ही मानता रहे, परंतु जाति में उसका पुनः प्रवेश कैसे हो सकता है ? जैसे नकटे, लूले और लँगड़े के अंग चले जाने पर फिर वापस नहीं आते, ठीक वैसे ही छोड़ी हुई जाति फिर कैसे मिल सकती है ? मंगल में धर्म-भ्रष्ट होने के कोई विशेष चिह्न लक्षित नहीं होते थे, लेकिन उसका इक़बाल तो था। मलाबार से मैजिस्ट्रेट की भी तो चिट्ठी आई थी। लोग बड़े असमंजस में थे। टीकाराम के सगे-संबंधी या इष्ट-मित्र ब्राह्मण भी कुछ इसी तरह के संकट में थे। परंतु उनके विषय में निकट-संबंध संकट को पार कर जाने की बराबर प्रेरणा कर रहा था, और निरंतर विचलित मन को अंत में बार-बार यह कहकर समझा लेते थे कि शास्त्रों में संसार के सब प्रकार के दोषों से उद्धार पाने का विधान है, फिर इस दोष की गिनती ही क्या ? शास्त्र सर्वज्ञ, सर्वव्यापी और नित्य हैं। शास्त्रों को अपूर्ण कहना उनमें त्रुटि निकालना है, और त्रुटि निकालना ख़ुद किसी-न-किसी प्रायश्चित्त का भागी होना है।

इस विचार-धारा ने नवलविहारी की प्रस्तावित धनुष-यज्ञ-

लीला को बहुत नुक़सान पहुँचाया। लोगों का झुकाव प्रस्तुत समस्या की ओर होता गया। लीला की आकांक्षा इस नई चिंता में दब-सी गई। जिन लोगों को चंदा देने के लिये आज-कल के वायदे करने पड़ते थे, उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मंगलवाला सवाल हल होने पर ही लीला होगी, और तभी चंदा देंगे। हेतसिंह ने यह बात सबसे पहले कही थी।

पीताराम की मंडली में इस तरह की कोई विघ्न-बाधा न थी। पात्र शौक़ और लगन से अपनी बातें रट रहे थे। बाबूराम अपना पार्ट याद कर चुका था, परंतु दुहरा न रहा था। लीला आरंभ होने में केवल चार दिन बाक़ी थे। मंगल के प्रायश्चित्त की समाप्ति, सत्यनारायण की कथा और ब्राह्मण-भोज में भी चार ही दिन और रह गए थे। प्रायश्चित्त आरंभ किए तीन दिन हो चुके थे।

एक दिन बाबूराम को ज़रा देर करके आया देखकर पीताराम ने कहा—"महाराज, तुम तो बड़ी देर में आने लगे हो। लीला आरंभ करने के लिये केवल चार दिन रह गए हैं, और आपका यह हाल है। कैसे ठीक पड़ेगा ?"

"मुझे सब याद है।" बाबूराम ने विश्वास-पूर्ण उत्तर दिया—"औरों को ठीक कर लीजिए। मेरे अभिनय में चूक न होगी।"

"परंतु आपका पार्ट श्रीलक्ष्मणजी का है।" पीताराम ने कहा—"बहुत टेढ़ा। परशुराम-लक्ष्मण-संवाद की सफलता

पर ही लीला का गौरव अवलंबित है। यदि आप कहीं एक शब्द भी भूल गए, या एक भी शब्द कहने में ढिलाई दिखलाई, तो सब काम मिट्टी हो जायगा।"

"न होगा, विश्वास रखिए।" बाबूराम बोला।

पीताराम ज़रा खिझलाकर बोला—"परंतु आप देर से क्यों आते हो? नेक जल्दी आ जाया करो, तो क्या कुछ बुराई होगी?"

बाबूराम ने शिष्टता के साथ उत्तर दिया—"आजकल मंगल दादा तथा उनके कुटुंबवाले प्रायश्चित्त कर रहे हैं। उनके लिये बाज़-बाज़ सामग्री जुटाने का काम मुझे करना पड़ता है। इसीलिये ज़रा विलंब हो जाता है।"

"यह प्रायश्चित्त कब तक समाप्त होगा?" पीताराम ने पूछा।

"आज से ठीक चौथे दिन।"

पीताराम ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा—"कहीं चौथे दिन आपको देर न लग जाय। यदि उस दिन देर लग गई, तो सब लीला चौपट हो जायगी। ऐन वक़्त पर श्रीलक्ष्मणजी का पार्ट करने के लिये हम कहाँ से ब्राह्मण-बालक पाएँगे?"

बाबूराम ने क्षुब्ध होकर कहा—"यदि आपको ऐसा भय है, और जो निर्मूल भी है, तो आप अभी से कोई दूसरा प्रबंध कर लीजिए।"

पीताराम सन्नाटे में आ गया। कुछ क्षण बाद शांत स्वर

में बोला—"ऐसी दिल्लगी न करो भैया। अब चार दिन में हम कैसे प्रबंध कर सकते हैं? पं० नवलविहारी के लोग हमारी-तुम्हारी दोनो की कैसी हँसी उड़ावेंगे।"

बाबूराम ने कहा—"परंतु मैंने यह कहा कब है कि मैं पार्ट छोड़ दूँगा? पार्ट अवश्य करूँगा। अभी पात्रों का पाठ होने दीजिए, अपनी सब बातें फर-फर सुनाए देता हूँ। आप तो नाहक़ घबरा जाते हैं।"

पीताराम हँसने लगा। बोला—"आपका स्वभाव श्रीलक्ष्मणजी महाराज-सरीखा ही है। जल्दी उग्र रूप धारण कर लेते हैं।"

रामलीला में अभिनय करनेवाले पात्रों का, लीला की समाप्ति और उसके कुछ दिनों अनंतर तक, बहुत आदर किया जाता है। बाबूराम ने भी उसी आदर को पाया था। अपनी परिस्थिति के इस गौरव का बाबूराम को ज्ञान था, इसलिये, संपत्ति और आयु में छोटा होने पर भी, उसे पीताराम के साथ मुँह जोड़कर बातचीत करने में संकोच नहीं हुआ।

पीताराम को विश्वास था कि बाबूराम उग्र रूप धारण करके भयानकता के साथ अपने अभिनय का निर्वाह करेगा। इस भावी सफलता का उसे अभी से बड़ा अभिमान था। अभी-अभी जो कुछ बाबूराम ने कहा था, उससे उसके मन पर बैठी हुई धाक ज़रा और गहरी हो गई। अभी और लोग

इधर-उधर की बातों में लगे हुए थे। पाठ (रिहर्सल) का कार्य शुरू न हुआ था। ज़रा-सी देर थी।

प्रसन्न कल्पना की तरंग में पीताराम ने बाबूराम से पूछा—"जहाँ तक मैंने सुना है, नवलविहारी और उनके कुछ मित्र तो मंगल के प्रायश्चित्त की बात से अलग हैं?"

"रहें अलग।" बाबूराम ने बेखटके कहा—"और बहुत-से ब्राह्मण काफ़ी तादाद में हैं, जो उनका साथ देंगे।" एक क्षण बाद बोला—"अपनी सभा के लिये भी निमंत्रण आएगा।"

पीताराम ने कहा—"परंतु टीकाराम तो नवलविहारी की पार्टी के आदमी हैं। और, यदि अन्य क्षत्रिय शामिल होंगे, तो हम लोग भी भोज में शामिल हो जायँगे।"

"हेतसिंह और उनके सजातीय जायँगे।" बाबूराम ने मज़े के साथ कहा।

"हेतसिंह कोई ठाकुर में ठाकुर हैं?" पीताराम बोला।

"क्यों?" बाबूराम ने गरम होकर पूछा—"आप लोगों की जाति से हेतसिंह ठाकुर किस बात में कम हैं?"

पीताराम जैसे जग पड़ा हो। बोला—"हाँ, हम लोग सब समान हैं। ख़ैर, देखा जायगा। परंतु आप इन उलझनों से अपने को और अपनी सभा को कुछ दिन दूर रक्खो।" इसके बाद अभिनयों का पाठ होने लगा।

(३५)

पीताराम की सभा जिस धर्म-कार्य में प्रवृत्त थी, उस पर नवलविहारी को आक्षेप तो नहीं था, परंतु उनके मन में हर्ष ज़रा भी न था। लीला आरंभ होने के दो दिन बाक़ी थे। यह स्पष्ट जान पड़ता था कि आरंभ अवश्य होगी। उधर मंगल का प्रायश्चित्त भी समाप्ति पर आ रहा था। नवलविहारी को चिंता थी कि विधान पूरा होते ही सत्यनारायण की कथा होगी, ब्राह्मणों का भोज होगा, और कुछ जातिवाले भी उसमें शामिल होंगे। उसके बाद दुनिया-भर में चर्चा होगी कि ब्राह्मणों ने एक मुसलमान को अपने में मिला लिया; वैश्य लोग शरीक होंगे नहीं, जाति के बहुत-से लोग आना-कानी कर ही रहे हैं; पीछे, जाति के उन ब्राह्मणों का, वैश्यों का और उनके-से विचार रखनेवाले दूसरे लोगों का अलगाव हो जायगा, और अंत में संपूर्ण जाति अवनति को प्राप्त होगी। उन्होंने इसके निवारण का एक उपाय सोचा। दफ़्तर से छुट्टी पाकर वैद्य रामसहाय के पास पहुँचे। वह अकेले मिल गए।

नवलविहारी बोले—"वैद्यजी, अभी से लोग बहुत बुरी निगाह से देखने लगे हैं। इस बात को लेकर बड़ा बवाल उठाया जा रहा है कि मंगल पंचगव्य पीने के लिये राज़ी नहीं।"

"मुझे तो समय ही कम मिलता है।" उन्होंने कहा—"परंतु जो कुछ कभी-कभी सुन लेता हूँ, उससे जी में बेचैनी पैदा हो जाती है।"

"पाँत-पंगतों में लोग प्रबंध के लिये बुलाया करते हैं, धनुष-यज्ञ करना है, रिश्तेदारियों को तोड़ नहीं सकता, बेटी-बेटों के ब्याह करने हैं, सेठ-महाजनों का संसर्ग अलग नहीं कर सकते। टीकाराम का साथ देते हैं, तो ऐसी विपत्ति में पड़ने की संभावना है, जिसका अनुमान कठिनता से किया जा सकता है।" कहकर नवलबिहारी ने अपनी चिंताकुल आँखें वैद्यराज के सामने से दूसरी ओर हटा लीं।

रामसहाय ने हँसकर कहा—"आप तो नाहक़ इतनी फ़िक्र में पड़े हैं। सीधी राह यह है कि हम लोग उस प्रायश्चित्त के भोज में शरीक न होंगे, टीकाराम से कोई ताल्लुक़ न रक्खेंगे।"

"इसके लिये मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ," नवलबिहारी बोले—"परंतु मेरे-आपके शरीक न होने से ही काम नहीं चल सकता। टीकाराम हमारी सभा और पार्टी के आदमी हैं। जिन लोगों को हमारे-आपके विचारों से परिचय नहीं, वे हमें और आपको टीकाराम के मामले में शामिल समझते हैं, और शामिल ही समझते रहेंगे। किस-किसकी ज़बान पकड़िएगा?"

वैद्य ने सलाह दी—"एक इश्तहार इस बात का छपा दो कि हमें इस झंझट से कुछ मतलब नहीं, और न इसमें हमारी सहमति है।"

माथे में शिकनें देकर नवलबिहारी ने कहा—"यह उपाय कम सफल होगा। अपने यहाँ कुछ बेहूदे छोकरे हिंदू-जाति

और देश का नाम ले-लेकर बड़ा शोरा मचावेंगे, और खूब विज्ञापनबाज़ी करेंगे। इन छोकरों के मा-बाप अवश्य अपना साथ देंगे, परंतु ये खुद ऊधम करके अपने धनुष-यज्ञ का विध्वंस कर देंगे, और पीताराम की लीला को बहुत शानदार बना देंगे।"

जब वैद्य की समझ में कुछ और न आया, तब बोले—"तो फिर अभी चुप रहो। लीला समाप्त होने पर विज्ञापन छपवा दो।"

"इससे अनर्थ हो जायगा।" नवलबिहारी ने गंभीरता से कहा—"प्रायश्चित्त हो चुकने के पहले ही हमें अपनी स्थिति स्पष्ट प्रकट कर देनी चाहिए, और इसके लिये एक सभा कल ही कर लेनी चाहिए।"

वैद्य ने उलझन से पार न पाते देखकर पूछा—"परंतु लौंडों-लपाड़ों को सभा में आने से कैसे रोकेंगे?"

"यह कुछ कठिन नहीं।" नवलबिहारी ने चाव के साथ तत्काल उत्तर दिया—"सब जातियों के प्रमुख पुरुषों और पंचों को खास तौर से बुला लेंगे। बिना बुलाया हुआ कोई न आने पावेगा।"

"कुछ स्वयंसेवक आपके पास हैं?" वैद्य ने कुछ स्मरण करके प्रश्न किया—"स्वयंसेवक हों, तो काम बन जायगा।"

"सेवा-समिति तो गैर-जिम्मेदार छोकरों की है। एक वैश्य-सेवक-दल है, जो वैश्यों की जातीय जिवनार इत्यादि के

अवसरों पर खूब काम करता है। इस दल की सेवा प्राप्त हो जायगी।" नवलविहारी ने उत्तर दिया।

रामसहाय ने जरा हिचककर पूछा—"सभापति किसको बनाओगे ?"

नवलविहारी मुस्किराकर बोले—"आपके सिवा ब्राह्मणों में शिरोमणि और है ही कौन ? यह कोई मुतफ़र्रिक़ सभा तो है नहीं कि चाहे जिसे सभापति बना लिया।"

रामसहाय ने प्रतिवाद के ढंग से कहा—"मुझे सभापति मत बनाना, मैं आपकी ही पार्टी का हूँ।"

नवलविहारी हठ-पूर्वक बोले—"उच्च विचारों के द्विजातियों के दल की यह सभा होगी। उसमें किसी दूसरी पार्टीवालों के एतराज की बात को गुंजायश ही नहीं।"

रामसहाय ने देखा, सभापति का पद ग्रहण करना अनिवार्य होगा। कहा—"ख़ैर, देखा जायगा। परंतु एक बात याद रहे, लोगों के पास सभा के स्थान, समय इत्यादि की सूचना का भार मेरे सिर न रहे। मुझे तो मीटिंग के समय बुलवा-भर लीजिएगा।"

नवलविहारी इस प्रस्ताव को स्वीकर करके चले गए। उसके बाद उन्होंने रात-भर और दूसरे दिन दफ़्तर जाने के समय तक अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये कोई कसर बाक़ी नहीं रक्खी। नगर के जितने लोग मंगल के प्रायश्चित्त से असंतुष्ट और असंगठित रूप से नाराज थे, उन सबको

उन्होंने एक ही लक्ष्य की ओर सीधा कर लिया। जो लोग प्रायश्चित्त के पक्ष में थे, इधर-उधर बिखरे हुए थे, और नवल-विहारी की इस साधना के विरोध करने का अपने भीतर बल और शौर्य अनुभव नहीं कर रहे थे, उनके हृदयों में एक अनिश्चित, अपूर्ण रूप-प्राप्त खलबली जरूर थी।

(३६)

नवलबिहारी की सभा ज़ोर-शोर से हुई। नगर में कोई अपने विचारों का अच्छा व्याख्यानदाता न मिलने के कारण पास के एक क़स्बे से धारा-प्रवाह बोलनेवाले को खास प्रबंध करके बुलवा लिया। केसे यह व्याख्यानदाता पचास रुपए रोज़ पर अपनी विद्वत्ता-पूर्ण वाणी का रसास्वादन करा दिया करते थे, परंतु इस समय, अनेक उलझनों से निष्कृति पाने के हेतु, उन्हें पचहत्तर लेने पड़े।

अधिवेशन ज़रा हिफ़ाज़त के साथ किया गया। उसके लिये इतने छिपाव-लुकाव की ज़रूरत थी भी नहीं, क्योंकि दूसरी तरह के विचारवाले लोग संख्या में थोड़े, उजड्डपने में कम और हो-हल्ला मचाने की कामना में अदृढ़ थे।

सभा खूब सफल रही। सभापति वैद्य रामसहाय थे। व्याख्याता को फूलों से लाद दिया गया। जय-नाद से सभा सजग हो उठी। कई प्रस्ताव पास किए गए। मुख्य यह था कि मंगल और उसके कुटुंबियों का जो लोग साथ देंगे, उनसे किसी तरह का संबंध न रक्खा जायगा। समझने योग्य भाषा

में इस व्यवस्था का नाम उसी समय 'बाइकाट' रक्खा गया।

नवलविहारी प्रसन्न थे, और अपने भीतर एक नवीन पुरुषार्थ का संचार अनुभव कर रहे थे। उन्होंने पर्चे छपवाकर बँटवाने के अपने पिछले मंतव्य को परिवर्तित कर दिया। दूसरे ही दिन सर्व-जातोय सभा के मुख्य प्रस्ताव को छपवाकर प्रकाशित कर दिया।

सारी हलचल का पता टीकाराम और उनके मित्रों को समय पर ही लग गया था, परंतु उसका प्रतिकार करने में वे असमर्थ थे। इस खबर को पाकर प्रायश्चित्त को अधूरा भी नहीं छोड़ सकते थे। न-मालूम और क्या-क्या लांछन सुनने को मिलें। प्रायश्चित्त की क्रिया बंद कर देने के बाद भो न-मालूम सर्व-जातीय सभा का प्रस्ताव व्यवहार में लाया जाय या न लाया जाय। इसलिये उन्होंने उसे सांगोपांग निभाना ही ठीक समझा।

उसी दिन प्रायश्चित्त की विधि पूरी होने को थी। हेतसिंह एक पर्चा टीकाराम के पास भी लाए। वैद्य रामसहाय को वह अपना हितेच्छु समझते थे। उनका नाम आंदोलन के विधायकों में पढ़कर आश्चर्य और क्षोभ हुआ।

हेतसिंह ने कहा—"पं० नवलविहारी को इतना शरीर में नहीं जानता था।"

टीकाराम बोले—"किसी को क्या दोष दूं, हमारा भाग्य ही खोटा है।"

"और तो देखिए," हेतसिंह ने आवेश के साथ कहा—"हमारी बिरादरी के भी कुछ लोगों को बहका दिया है; परंतु मैं परवा नहीं करता। मेरे साथ भी बहुत जनता है।"

टीकाराम ने कृतज्ञता-पूर्वक कहा—"ठाकुर साहब, हम लोगों के लिये आप क्यों व्यर्थ झमेले में पड़ते हैं।"

"कुछ झमेला नहीं, थोड़े समय में सबको ठीक कर दूँगा।"

"तब भोज में किस-किसको निमंत्रण दिया जाय?"

"जिन्हें निमंत्रण देना निश्चित कर चुके हो, उन्हीं को बुलाइए।"

"बाबूराम ने पीताराम की मंडली से कह रक्खा है।"

"पीताराम! उस गँवार को भी बुलाइएगा?" हेतसिंह ने ज़रा तीखी आवाज़ में कहा।

"क्या करूँ, मैं बड़ी मुश्किल में हूँ। सच मानिए, कंठ में प्राण हैं। जब देखूँगा, किसी तरह नहीं बनती, आत्महत्या कर लूँगा।"

हेतसिंह तुरंत ठंडे होकर बोले—"नहीं जी, यह क्या वाहियात बात कहते हो। हमारा-उसका यदि कोई झगड़ा होगा, तो उसे यहाँ थोड़े ही उठने देंगे। बुला लो, हमें कुछ उज्र नहीं।"

इतने में हरीराम कुछ मतवाली चाल से आया। टीकाराम

ने उसे इतनी आज़ादी से आता हुआ देखकर ज़रा भौंह तानी। कुछ कहते कि वह बोला—"महाराज, मेरा बाइकाट हो गया।"

"बाइकाट क्या जी ?" टीकाराम ने अप्रसन्न होकर पूछा।

"बाइकाट नहीं जानते, बाइकाट यह कि मेरा हुक़्क़ा-पानी ज़ात-बिरादरी ने बंद कर दिया है।" हरीराम ने स्वच्छंदता-पूर्वक उत्तर दिया।

टीकाराम ने उदास भाव से हेतसिंह से कहा—"इस अत्याचार को देखिए। यह ग़रीब भी हम लोगों के साथ पीसा गया।"

हरीराम तुरंत बोला—"सो मेरा उन ससुरों ने क्या बिगाड़ लिया ? मुझे कौन लड़के-लड़की ब्याहना हैं। मैंने तो अपनी ज़ात के कुछ पंचों से अभी-अभी कहा है कि तुमने मुझे बिरादरी से अलग नहीं किया, बल्कि मैंने तुम लोगों को ज़ात से ख़ारिज किया।"

हेतसिंह मुस्किराकर बोले—"तब उन लोगों ने तुम्हारे दो-चार धौल नहीं जमाए ?"

"बकते तो देर तक रहे, परंतु मैं अपनी बिरादरी का प्रायश्चित्त जानता हूँ, जब चाहे, तब मिल जाऊँगा।"

"कैसे ?" हेतसिंह ने जानना चाहा।

"पंचों को दो रुपए की शराब पिला देने से सब काम बन जायगा।" हरीराम ने विधान बतलाया।

टीकाराम ने चिढ़कर कहा—"बहुत बड़-बड़ मत कर, जा यहाँ से दलिद्दर कहीं का।"

हरीराम ने जाते-जाते कहा—"महाराज, मैं शराब नहीं पीता, और न अपने पंचों को खुश करने के लिये मेरे पास दो रुपए फ़ालतू हैं।"

उसके चले जाने पर हेनसिंह ने कहा—"आज के भोज में, मालूम होता है, बहुत कम आदमी आएँगे।"

टीकाराम निराश होकर बोले—"जितना उपाय हो सकेगा, करूँगा। परंतु अकेले भुगतने की हिम्मत अब नहीं रही। आप ज़रा जल्दी आ जाइएगा।"

(३७)

जिस ब्राह्मण ने मंगल इत्यादि के प्रायश्चित्त का विधान कराया था, वह ठीक समय के ऊपर ग़ायब हो गया। तब टीकाराम ने स्वयं बाक़ी कार्य संपन्न किया। सत्यनारायण की कथा पढ़ने के लिये एक दरिद्र ब्राह्मण मिल गया था, परंतु कथा की समाप्ति करके भोजन के समय वह भी अंतर्धान हो गया।

भोज के समय ब्राह्मणों में केवल टीकाराम के निकट-संबंधी थे। एक बाबूराम ही बाहर का था। उसके घर में वह और उसकी बूढ़ी मा थी, जिसे सुनाई बिलकुल नहीं पड़ता था। इसलिये उसकी स्वच्छंदता का मार्ग साफ़ था। वही टीकाराम के उस दिन के भोज में सबसे अधिक भाग ले रहा था।

जब ब्राह्मण-भोजन हो चुका, तब दूसरे लोगों की बारी आई। हेतसिंह के दबाव के कुछ ठाकुर आए, वैश्य एक भी न आया। और जातियों के एक-एक दो-दो आदमी थे, जो अपनी बेफ़िक्री में 'सर्व-जातीय सभा' के प्रस्ताव को डुबोकर वहाँ आ गए थे।

पीताराम या उसकी सभा का वहाँ उस समय तक कोई व्यक्ति न आया था। बाबूराम को विश्वास था कि सबसे बड़ी संख्या में हमारी सभा के ही आदमी आवेंगे। परंतु कुछ देर घाट जोहने के बाद सभा का एक ही आदमी आया। वह भी बाबूराम को अकेले में बात करने के लिये एक तरफ़ ले गया। बोला—"लीला प्रारंभ होने में विलंब नहीं। शीघ्र बुलाया है।"

"परंतु पहले भोज तो हो ले।"

"क्या अभी समाप्त नहीं हुआ ?"

"अभी कहाँ। अपनी सभा का तो अभी तक कोई आया ही नहीं।"

"कोई न आएगा। आपको ही लेकर एक तूफ़ान उठ खड़ा है, और लोग आएँगे, तो असह्य होगा। श्रीलक्ष्मणजी की बात और है।"

बाबूराम सन्न हो गया। एक क्षण बाद बोला—"मुझमें यदि शक्ति होती, तो मैं तुम्हारी सारी सभा को तत्काल भस्म कर देता।"

"क्यों ? क्यों ?"

"तुम लोग एक दुखिया ब्राह्मण का सर्वनाश करने पर तुले बैठे हो ?"

"ब्राह्मणों की सभा ने ही तो निर्णय किया है।"

"उस नीच नवलविहारी के नाम पर जो सभा हुई थी, उसकी दुहाई दी, तो एक चाँटा तुम्हारे भी रसीद करूँगा।"

"खैर, मुझे क्या करना है ; आप जो आज्ञा देंगे, सभा में कह सुनाऊँगा।"

एक क्षण सोचकर उस बालक ने कहा—"कह देना, यदि सभावाले यहाँ तुरंत नहीं आते, तो मैं कदापि अभिनय के लिये नहीं आऊँगा, चाहे ब्रह्मा भी बुलाने आवें।"

"ज़रा सोचिए तो सही, आपके सिवा श्रीलक्ष्मणजी का पार्ट करने को वहाँ और कोई तैयार ही नहीं।"

"मेरी बला से। जाओ, सुना देना उन सबको मेरा यह निश्चय। और, यह भी कह देना कि आज से दस दिन पीछे हम लोग जो धनुष-यज्ञ खेलेंगे, वह ऐसा होगा, जैसा कभी न खेला गया होगा। और, उसमें ठाकुर हेतसिंह और पं० टीकाराम हमारी सहायता करेंगे।"

इतने में वहाँ पचास-साठ लड़के आ पहुँचे। मालूम होता था, जैसे कोई स्कूल एकाएक तोड़ दिया गया हो, और किसी लंबी छुट्टी के समय उपद्रव के लिये निकल पड़े हों।

बाबूराम उनमें से एकाध को पहचानता था। एक परिचित ने कहा—"क्यों जी, तुम तो आज रामलीला में खेलनेवाले थे, इस यज्ञ में कहाँ से आ पहुँचे?"

"अपना काम करने। और, आप लोग कहाँ जा रहे हैं?"

"कहाँ जा रहे हैं? यहीं तो आए हैं। क्या भोज समाप्त हो गया? कुछ भी नहीं बचा?"

"सब कुछ रक्खा है।"

"तब हम अतिथियों को थोड़ा-थोड़ा-सा दो। बिना खाए नहीं मानेंगे। यदि मंगल की जूठी पत्तल में ही थोड़ा-सा बचा होगा, तो उसी में से बाँट खायँगे।"

शोर सुनकर हेतसिंह और टीकाराम आ गए। उनके बाद मंगल भी आ गया। परंतु वह ज़रा पीछे खड़ा था।

टीकाराम को स्थिति समझने में देर नहीं लगी। बोले—"भाई, तुम लोग अपने मा-बाप को व्यर्थ क्यों आफ़त में डालते हो?"

एक लड़का बोला—"पंडितजी, हम लोग इस तरह टाले नहीं टलेंगे। कुछ खाकर ही लौटेंगे।"

टीकाराम इन लड़कों का हठ देखकर गद्गद हो गए। एकाएक बोले—"आज मालूम हुआ कि मेरे एक मंगल ही नहीं, अनेक मंगल हैं।"

उन्होंने लड़कों को आदर के साथ भीतर बिठलाया। भोजन-

सामग्री बहुत रक्खी हुई थी. क्योंकि अनेक आमंत्रितों में से बहुत-से आए नहीं थे, और न आने की संभावना थी।

मंगल की मा ने परोसा। लड़के बोले—"मांजी, तुम नहीं। घर पर भी मा का परोसा हुआ खाते हैं; मंगल भाई परोसें, तब खायँगे।"

मंगल ने परोसा। लड़कों को भूख न थी। थोड़ा-थोड़ा खाकर उठ गए। केवल बाबूराम ने खूब पेट भरकर खाया।

जब सब लड़के हँसते और शोर मचाते बाहर आए, तब पीताराम को तीन-चार आदमियों के साथ बैठा पाया। बहुत रंजीदा था।

बाबूराम के पैर पड़कर बोला—"मेरी लाज रख लीजिए। आज मेरी बात जाती है।"

बाबूराम ने बेखटके कहा—"और, आप मेरी बात रक्खें।"

"क्या आज्ञा होती है?" पीताराम ने व्याकुलता के साथ पूछा।

"थोड़ा-सा भोजन कर लो।" बाबूराम ने उत्तर दिया—"मैं चलने को तैयार हो जाऊँगा। नहीं तो, इतना पेट भरकर खाया है कि अब एक डग भी कहीं जाने को जी नहीं चाहता।"

मंगल इस बातचीत को सुनने के लिये पास आ गया।

पीताराम बोला—"मैं बड़े असमंजस में हूँ। वैसे तो ब्राह्मणों का जूठा खाने में भी मुझे परहेज नहीं। बिरादरी के भय के मारे हिम्मत नहीं पड़ती।"

मंगल तुरंत बोला—"नहीं, आप यहाँ भोजन करके अपना धर्म न बिगाड़ें। जायँ।" पीताराम को आशा थी कि बाबूराम करतल-ध्वनि और वाह-वाह की कीर्ति-कामना-वश थोड़े-से कहने-सुनने पर चलने को राजी हो जायगा। कुछ कहना चाहता था कि हेतसिंह, जो एक तरफ़ बैठे थे, न रुके, बोले—"हम लोगों ने तो निमंत्रण इस कारण दिलवाया था कि आप अपने को ठाकुर समझते हैं, जब हम लोग यहाँ आए, तब आप लोगों के भी आने की आशा थी।"

टीकाराम को भय था कि हेतसिंह ऊटपटाँग कुछ कह बैठेंगे, परंतु उनको इतनी शांत वार्ता करते सुनकर टीकाराम को आश्चर्य हुआ। पीताराम को इसमें कुछ-कुछ व्यंग्य जान पड़ा। बोला—"हम अपने को ठाकुर ग़लत नहीं समझते।"

हेतसिंह ने हँसकर कहा—"हम कब कहते हैं?"

बाबूराम बोला—"क्षत्रिय अब ब्राह्मणों की रक्षा नहीं करते। उनका बिगाड़ करते हैं।"

"क्या बिगाड़ किया महाराज?" पीताराम ने लक्ष्मणजी का पार्ट करनेवाले से पूछा।

"यही कि आप लोग ब्राह्मणों को चांडाल के बराबर समझते हैं।" तत्काल उत्तर दिया।

पीताराम को विलंब हो रहा था। लीला के लिये नियुक्त समय में बहुत थोड़ी घड़ी बाक़ी थी। घबराकर बोला—

श्रोर गया। उनके दुःख का उसे कारण मालूम था, प
उसे दूर करने का उपाय उसे न सूझता था। बैठी-बैठ
केवल सोचा करती थी।

उधर बस्ती के मुखिया लोग भी चैन में न थे। उन
लड़कों ने मंगल के हाथ का परोसा खाया है, यह बात ख
पल्लवित होकर फैली। मुखियों ने जिस तूफ़ान को उठाया थ
उसके चक्कर में वे स्वयं पड़ने लगे। शायद नवलबिहारी औ
रामसहाय को छोड़कर सबको कुछ-न-कुछ फ़िक्र घेरे हु
थी। सारी जातियों को इस तूफ़ान ने हिला दिया। ऐस
मालूम होता था कि जब तक कोई श्रोर बड़ी घटना घटित
होगी, जनता का ध्यान उसी में उलझा रहेगा।

नवलबिहारी की मुस्किराहट के नीचे जो कट्टरता थी, उ
अनेक लोग जानते थे। इसलिये लोगों ने उन्हें समझा
बुझाने की चेष्टा कम की। समझाते भी क्या? ज्यादा-से
ज्यादा यही कहते कि कोई ऐसा ढंग निकालिए, जिस
असली दोषी को—यानी टीकाराम के कुटुंब को—भले
कुछ ढंग मिल जाय, श्रोर लोग इस चक्की में न पिसें। पर
नवलबिहारी के पास एक ही उत्तर था—"असंभव।"

तब लोग रामसहाय के पास पहुँचे। उनसे कहा—"इ
आफ़त का इलाज करिए। इससे हम सब तबाह हुए
रहे हैं।"

"क्या करूँ?" रामसहाय ने पूछा।

"एक सभा करके इस 'बाइकाट' को समाप्त कर दीजिए। प्रायश्चित्त तो हो गया। कोई कसर नहीं रही।"

"बॉयकॉट का समाप्त होना मुश्किल है।"

"नहीं समाप्त करते, तो अपने आप टूटता है। एक दूसरे का परस्पर इतना अधिक संसर्ग और व्यवहार है कि चार दिन भी किसी का नहीं चल सकता।"

"यह बात तो उसी समय सोच लेनी चाहिए थी।"

"हम लोग देवता नहीं कि भविष्य की सब बातों को सोच-कर काम किया करें।"

"नवलविहारी क्या कहते हैं?"

"वह तो विचित्र हठी हैं। नहीं मानते, तो न मानें। हमको तो अपना निर्वाह करना है। किसी तरह निष्कृति का उपाय करिए।"

कुछ और बातचीत के बाद अंत में सभा करने का निश्चय हुआ। उसके साथ ही यह भी तय किया गया कि टीकाराम इत्यादि मंदिर में जाकर चरणामृत ले लें, तो प्रायश्चित्त संपूर्ण समझ लिया जायगा।

इस छोटे-से छेद में होकर निकल जाने का सुगम मार्ग देखकर अधिकांश लोगों को संतोष हुआ। टीकाराम के पास संदेसा भेजा गया। उन्होंने स्वीकार कर लिया। परंतु मंगल ने कहलवा भेजा कि नवलविहारी के मंदिर में चरणामृत-पान और दर्शन की व्यवस्था होगी, तो मैं आऊँगा,

नहीं तो और सब लोग चाहे जहाँ जायँ, मैं कदापि न आऊँगा।

(३६)

हेतसिंह अपने को बहुत चतुर और चालाक समझते थे, परंतु इसी तरह के अनेक लोगों की तरह वह वास्तव में कुटिल नहीं थे। लोगों के चरित्र समझने में उनसे प्रायः ग़लती होती थी, और अपने वर्गाभिमान के कारण दूसरे स्वाभिमानी लोगों से उनकी खटपट हो जाती थी। ऐसी खटपट एक ही फल की दिशा में समाप्त हुआ करती है, वह कह दिया करते थे—"कौन मेरी जाति का है; क्या इसके साथ लड़का-लड़की का व्यवहार करना है, जो ख़ुशामद करूँ ?"

नवलविहारी से मेल-जोल की कड़ी टूट जाने पर भी उनके संबंध की स्थिति भयानक नहीं हो उठी थी। कम-से-कम उनका यही विश्वास था। 'बाइकाट' या 'बुआयकाट' की उस अस्थिर अवस्था में एक रात हेतसिंह नवलविहारी के पास गए। उनकी बैठक में दो भाग थे। एक भाग का संबंध सीधा भीतर से था। जहाँ वह बैठते थे, उससे भी उक्त भाग का संबंध था।

हेतसिंह के बुलाने पर आ गए। साधारण आगत-स्वागत के उपरांत आने का कारण पूछा।

"आप तो हमसे काफ़ी नाराज़ होंगे, पर हम भी ऐसे बेशरम हैं कि आए बिना न माने।" हेतसिंह ने प्रवेशिका के ढंग पर कहा।

नवलविहारी ने अपनी सहज मुस्किराहट के साथ प्रश्न किया—"कहिए, आप लोगों की रामलीला खूब सफल रही ?"

हेतसिंह आँख दबाकर बोले—"हम लोगों की कैसी ? पीताराम के समाज की थी। हम लोगों की तो अब होगी।"

"कब कर रहे हैं ?"

"जब आपकी आज्ञा हो।"

"मेरी आज्ञा !" नवलविहारी ने ज़रा चकित होकर कहा।

"बेशक आपकी आज्ञा बिना होगा ही क्या ?" हेतसिंह ने खूब चतुराई के साथ अपना उत्साह प्रकट किया—"आप दिन मुक़र्रर कर दीजिए।"

नवलविहारी गंभीर होकर बोले—"आप लोगों ने वह दिन बहुत दूर फेंक दिया है। क्षत्रिय होकर आपने भी धर्म की अवहेलना की।"

"मैंने क्या किया ?" हेतसिंह ने यथाशक्ति अपनी चतुरता की रक्षा करते हुए पूछा।

नवलविहारी की सहज मुस्किराहट होठों पर लौट आई। बोले—"मुझे क्या ? मैं अकेला धर्म का ठेकेदार थोड़े ही हो सकता हूँ। आप सब लोग गड्ढे में गिरें, तो मैं अकेला कब तक अपना निवारण कर सकता हूँ।"

हेतसिंह ने सावधानी से कहा—"देखिए पंडितजी, यदि आप प्रायश्चित्तवाली बात कहते हों, तो मैं आपको याद दिलाता हूँ कि जिस दिन मंगल कोतवाली से छूटकर आया

था, उस दिन टीकाराम की बैठक में आपने स्वयं स्वीकृति दे दी थी।"

"मैंने यह कह दिया था कि चमार-चांडाल, चाहे जिसे इस तरह के प्रायश्चित्त की विडंबना के सहारे पक्का ब्राह्मण बना लो? यदि आपको स्मरण हो, तो सोच लीजिए, मैंने कभी स्वीकार नहीं किया था।"

"मुझे ख़ूब याद है कि आपने और पं० रामसहाय वैद्य ने सब बातों को पसंद किया था।"

"यह ग़लत है।"

"नहीं, बिलकुल सही है।"

हेतसिंह की चतुराई और सावधानी की इति हो गई, और उनके मन में अपने विश्वास और कार्य के गौरव की उष्णता आ गई।

नवलविहारी ज्यादा दक्ष आदमी था। ठंडक के साथ बोला—"जैसा आप कहते हैं, वैसा ही सही। मेरे जी को नहीं सुहाता। जैसा अच्छा लगता है, वैसा करता हूँ।"

हेतसिंह इस ठंडक से बहुत ढल गए। यहाँ तक कि विनीत भाव से बोले—"परंतु पंडितजी, आप एक बात से इनकार नहीं कर सकते; प्राचीन श्री की रक्षा के लिये और वर्तमान समाज की आवश्यकता को पूरा करने के लिये इन साधनों की बड़ी भारी ज़रूरत है, अन्यथा हम लोगों का जीवन समाप्त है।"

नवलविहारी ने हँसकर कहा—"यह तो ठाकुर साहब, क्षत्रियों का न्याय-शास्त्र नहीं, स्कूल के छोकरों की दलीलें हैं, जो अँगरेजी पढ़ने के प्रभाव से उत्पन्न हुई हैं। क्या आपने तुलसीदासजी की कलियुग-कल्पना को इतनी जल्दी भुला दिया ? और, इतने दिनों जो हमारा धर्म और समाज संसार में टिका रहा, सो क्या इन्हीं छोकरों की दलीलों के आश्रय पर ? और क्या इस तरह के प्रायश्चित्तों के मारे वर्णाश्रम बचा रहेगा ?" नवलविहारी कहते-कहते गंभीर हो गए, और बोले—"आज मुसलमान हुए ब्राह्मण को फिर ब्राह्मणों में मिला लिया, कल जन्म-जात मुसलमान को ब्राह्मण बनाइए, और परसों हिंदू नाम ही का संपूर्ण लोप कर दीजिए।"

इस तर्क के सामने हेतसिंह निरुत्तर हो गए। इसमें कोई संशय नहीं कि उन्होंने जो युक्ति नवलविहारी के सामने पेश की थी, उनकी निज की नहीं थी, और उन्हें उपस्थित विषय के संबध में अधिक जानकारी भी न थी।

परंतु हार मान लेना सीधी बात नहीं। बोले—"फिर हम लोगों की संख्या दिनोंदिन कम होती चली जायगी।"

नवलविहारी ने मुस्किराकर कहा—"यह तो कलियुग का प्रभाव ही है। उत्तरोत्तर नाश की ओर संसार बढ़ा चला जा रहा है। कर्म की गति। कलियुग के अंत में प्रलय होने पर जब फिर सृष्टि की रचना होगी, तब सब संसार में फिर वर्णा-

श्रम का आविर्भाव होगा। पुनः वही सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का चक्र चलेगा। इसलिये मेरी तो ध्रुव धारणा यह है कि चाहे अंत में एक ही हिंदू क्यों न बचे, परंतु हो वह नितांत पवित्र और शुद्ध।"

इस दीर्घ भविष्य की गंभीर कल्पना पर ठाकुर हेतसिंह की बुद्धि चकरा गई। उन्हें विश्वास हो गया कि नवलविहारी को युक्तिवाद से नहीं हराया जा सकता। तब चतुराई का एक तीर और छोड़ा। बोले—"पंडितजी, आप बड़े विद्वान् हैं। मैं आपसे शास्त्रार्थ नहीं कर सकता, और न शास्त्रार्थ करने आया ही था। मैं एक ही निवेदन के लिये आया था, और वह यह है कि चाहे जो कुछ हो, एक बार धूमधाम के साथ धनुष-यज्ञ अवश्य किया जाय। जितना रुपया लगे, मैं एक घंटे के भीतर आपके चरणों में हाज़िर करने को तैयार हूँ।"

नवलविहारी ने ज़रा तीव्र होकर कहा—"ठाकुर साहब, ब्राह्मण को, असली सच्चे ब्राह्मण को कोई लोभ-लालच पथ-भ्रष्ट नहीं कर सकता। मैं ऐसे किसी आदमी के साथ किसी काम में भी सहयोग न करूँगा, जो पतित हो चुका है। चाहे वह ब्राह्मण हो, चाहे कोई और।"

ठाकुर के दिल पर कड़ी चोट लगी। आँखों में तारे छुटक पड़े। क्षीण स्वर में बोले—"यदि किसी ब्राह्मण को कोई ज़बरदस्ती पथ-भ्रष्ट कर दे, तो?"

"असंभव।"

"एक विनती मेरी है।" किसी कोमल कंठ ने बैठक के उस भाग से कहा, जो नवलविहारी के भीतरी हिस्से से मिला हुआ था।

दोनो की दृष्टि उस ओर गई। कोई स्त्री चादर से मुँह ढाँपे खड़ी थी।

नवलविहारी को आश्चर्य हुआ। पहचान न सके। परंतु उस स्त्री के पीछे अपनी पत्नी को खड़ा देखकर पूछने लगे—"यह कौन हैं? किसलिये आई हैं? क्या चाहती हैं?"

उनकी पत्नी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह स्त्री बोली—"एक भीख माँगने आई हूँ।"

नवलविहारी ने पूछा—"आप कौन हैं?"

"मंगल की मा।" उत्तर मिला।

नवलविहारी जरा हिल गए, परंतु उन्होंने अपनी कमज़ोरी को ज़ाहिर न होने दिया।

शिष्टता के साथ पूछा—"आप किसलिये आई हैं?"

मंगल की मा ने कहा—"हम लोगों पर आपकी सदा कृपा-दृष्टि रही है। मंगल को आशीर्वाद दीजिए, यही भीख माँगने आई हूँ।"

हेतसिंह कुछ उत्साहित होकर बोले—"पंडितजी, क्या आप अपने आशीर्वाद से भी वंचित रक्खेंगे?"

"मैंने तो ऐसा कभी नहीं कहा।" नवलविहारी मुस्किराकर बोले—"परंतु यह मैं बिना कहे नहीं रह सकता कि प्रायश्चित्त

शास्त्रोक्त नहीं हुआ। पंचगव्य से क्यों परहेज़ किया गया?"

"उसका दंड जो कुछ, आप चाहें, हम लोगों को दे दें।" मंगल की मा ने कहा—"हम सबने तो पंचगव्य पिया। लड़का बहुत दिनों बीमार रहा है, इसलिये पंचगव्य न पी सका।"

नवलविहारी हँसकर बोले—"यह सब उसकी बहाने-बाज़ी है।"

हेतसिंह अपनी सब कुशलता भूलकर बोले—"जब ब्राह्मण लोग दान-दक्षिणा लेकर अपने यजमानों के लिये सब तरह के पूजा-पाठ कर सकते हैं, तब माता-पिता के यथाविधि प्रायश्चित्त कर लेने पर भी उसका फल मंगल को क्यों नहीं मिलेगा?"

मंगल की मा बोली—"और कुछ नहीं, केवल आपकी अनुमति मंदिर में दर्शन करने के लिये प्रवेश-भर के लिये चाहती हूँ।"

आशीर्वाद-याचना के बाद केवल 'मंदिर में दर्शन करने की अनुमति' की बात से नवलविहारी के अभिमान को चोट लगी—उस अभिमान को, जो हेतसिंह की बात से काफ़ी मर्माहत हो चुका था। बोले—"ऐसे लोग मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकते।"

फूलरानी ने करुण स्वर में कहा—"मंगल और हम लोग

आप ही लोगों के हैं। आपकी अनुमति से देव-दर्शन का जो पुण्य हम लोगों को प्राप्त होगा, उससे आपको भी तो पुण्य प्राप्त होगा।"

"सैकड़ों मंदिर यहाँ हैं।" नवलबिहारी ने रुखाई के साथ कहा—"मेरे ही मंदिर से हठ क्यों है? मैं अपने मंदिर को पतित न होने दूँगा।"

"परंतु आप और देवता तो पतित-पावन हैं।" मंगल की मा स्थिरता के साथ बोली—"गंगाजी में पापी स्नान करते ही अपने पापों से मुक्त हो जाता है, परंतु गंगाजी को वह पाप छूता भी नहीं।"

क्षोभ के साथ नवलबिहारी बोले—"यह सब दलील बेकार है। मेरा मंदिर है, मुझे अधिकार है, चाहे जिसे आने दूँ, चाहे जिसे न आने दूँ। इसमें किसी का इजारा नहीं।"

"परंतु पंडितजी," हेतसिंह ने कहा—"मंदिर बनवाया भले ही आपके पुरखों का हो, किंतु उसमें दर्शन करने का अधिकार हिंदू-मात्र को है।"

"जब हिंदू हो, तब तो।" नवलबिहारी ने तुरंत उत्तर दिया।

"तो क्या हम सब लोग हिंदू ही नहीं?" हेतसिंह ने प्रश्न किया।

"हों या न हों।" नवलबिहारी बोले—"इससे हमें कोई बहस नहीं। मैंने तो अपनी इच्छा बतला दी।"

"खूब ! खूब !!" हेतसिंह के मुँह से क्रोध के अत्यंत आवेग में केवल इतना ही निकला।

मंगल की मा तुरंत बैठक में आकर नवलविहारी के पैरों पर गिरने को हुई कि वह झिझककर जरा पीछे हट गए, हेतसिंह उछलकर बीच में आ गए। बोले—"बस मा, बस। प्रलय हो जायगी। यह मत करना। हाड़-मांस के हम इतने आदमियों के जीते-जी तुम्हारा यह अपमान ! चलो, घर चलो। उसके पैर मत छुओ, नहीं तो यह ब्रह्मांड काँप उठेगा। ओफ् ! ओफ् !!" और, हेतसिंह मंगल की मा को हाथ पकड़कर वहाँ से लिवा ले गए।

नवलविहारी की पत्नी रो रही थी।

(४०)

रामसहाय वैद्य को लोग कठोर आचार-विचार का आदमी समझते थे। शायद किसी समय रहे हों, परंतु वह सुश्रुत और वाग्भट्ट के कभी-कभी ऐसे-ऐसे नुसखे व्यवहार में लाते थे, जिससे कभी-कभी उनके मन को भी ग्लानि हो उठती होगी। इस बात के बतला देने में बहुत अधिक हानि नहीं जान पड़ती कि उन्हें अपना और अपने कुछ मरीजों का व्यवहार प्रायः दूसरों से छिपाना पड़ता था।

उनके कुछ विश्वासों को चरक-सुश्रुत इत्यादि ने ही शिथिल नहीं किया था, बल्कि इधर-उधर की पुस्तकों, समाचार-पत्रों और शिथिल-विचार लोगों की संगति की भी उनके विश्वासों

की तह को हिलाने में ज़िम्मेदारी थी। तबियत थी नरम, इसलिये इस शैथिल्य ने उनको कट्टरता और उदारता की लड़ाई में ज़ाहिरा तो कट्टरता के पक्ष का पाया रक्खा, परंतु शैथिल्य ने उस पाए को भीतर से पोला कर दिया।

उनके पास 'बाइकाट' की उतरती गरमी को शांत करने के लिये जो लोग पीछे से गए, उनमें से एक हेतसिंह भी थे। नवलबिहारी के घर से क्रुद्ध लौट आने के दूसरे दिन सवेरे टीकाराम से बिना मिले हुए ही हेतसिंह उनके पास गए। कुछ लड़के रामसहाय के औषधालय में पहले से बैठे थे। मरीज़ वैद्यजी का मुँह ताक रहे थे। वह लड़कों के साथ बातचीत कर रहे थे।

एक लड़के ने कहा—"सभापति आप ही को बनना पड़ेगा। यदि आप इनकार करेंगे, तो हम लोग अन्न-जल त्याग देंगे।"

दूसरा बोला—"अजी नहीं, हम ज़बरदस्ती पकड़कर ले जायँगे, और कुर्सी पर बिठला देंगे, चाहे वैद्यराज हमें मार भले ही डालें।"

हँसकर वैद्यराज ने कहा—"बात ज़रा भद्दी मालूम होती है। पहली सभा, जिसने बहिष्कार का प्रस्ताव स्वीकार किया था, मेरी प्रधानता में हुई थी। अब दूसरी सभा, बिलकुल प्रतिकूल बात तय करने के लिये, मेरे सभापतित्व में कैसे हो सकती है?"

लड़का बोला—"यह तो और भी बड़ा कारण है। आपने क़ानून बनाया, आप ही उसे मिटाइए।"

हेतसिंह ने कहा—"आपके सिवा सभापति होने लायक़ और कोई इस नगर में है भी तो नहीं।"

वैद्य ने कहा—"पं० नवलविहारी को बनाओ। वह इससे संतुष्ट हो जायँगे।"

"कदापि नहीं।" हेतसिंह बोले—"इन्हें सभापति बनाकर क्या नगर का विध्वंस कीजिएगा?"

"क्यों, उन्होंने क्या किया?"

एक लड़का बीच में पड़कर बोला—"यह सब जाँच-पड़ताल अनावश्यक है। सभा कीजिए, और उसके सभापति बनकर इस नगर का संकट काटिए।"

वैद्य ने फिर अस्वीकृत किया, परंतु स्वर में दृढ़ता की भनक न थी।

उसी समय कई मरीज़ों ने दवा के लिये तक़ाज़ा किया।

लड़के भी हठ-पूर्वक अपनी बात कहने लगे। किसी तरह छुटकारा न देखकर रामसहाय ने कहा—"अच्छी बात है, मैं ही सभापति बन जाऊँगा, परंतु इसका कोई नोटिस मत छपवाना।"

एक लड़का, जो सबमें ज्यादा बाइयाँ मालूम पड़ता था, तुरंत स्वीकार करके बोला—'नोटिस का क्या काम? हम

लोग कोई नोटिस अपने नाम से नहीं छपवाएँगे, आप विश्वास रक्खें।"

वैद्यराज अपने काम में लग गए, और इसका कोई उत्तर नहीं दिया।

हेतसिंह ने लड़कों से सभा का समय और स्थान नियुक्त करने के लिये कहा।

रामसहाय से बात करके लड़कों ने उसी दिन संध्या-समय रामसहाय के औषधालय ही में अधिवेशन करने का निश्चय किया। रामसहाय अपने स्थान पर सभा नहीं करना चाहते थे, परंतु उनकी न चली।

(४१)

उक्त सभा में जाने का मंगल ने भी संकल्प किया। बाबूराम भी चाहता था। अधिवेशन में जाने से कुछ देर पहले हरीराम उसके पास आया। मंगल उस समय अकेला बैठा था।

हरीराम ने कहा—"लल्ला, बुलाया है।"

"किसने ?"

"बहूजी ने।"

"अभी नहीं आऊँगा। कह दो।"

हरीराम बोला—"माजी ने भी कहा है कि बुला लाओ।"

"क्यों मेरे पीछे पड़ा है ? मैं अभी नहीं जाऊँगा।"

"माजी ने बहुत निहोरे करके कहा था।"

मंगल खिसियाकर बोला—"माजी की मति को जाने क्या

हो गया है। उनसे पूछा कि उस बदमाश नवलविहारी के यहाँ क्यों गई थीं ?"

"गई होंगी।" हरीराम ने अप्रतिहत भाव से कहा—"किसी जरूरी काम से बुलाया है। चलो, देर मत करो।"

मंगल बोला—'तुम लोगों के मारे बड़ी आफ़त है। क़भी-कभी ऐसा बेचैन कर देते हो कि मन चाहता है, फाँसी पर चढ़ जाऊँ। जा, कह दे, अभी न आऊँगा, न आऊँगा, न आऊँगा।"

"अच्छी बात है, न जाओ भैया।" हरीराम ने मुँह लटकाकर कहा—"परंतु मैं साथ न छोड़ूँगा, चाहे मेरा गला काट डालो। कहाँ जा रहे हो ?"

इस प्रश्न पर मंगल को एकाएक हँसी आ गई। बोला—"अब कहीं भागूँगा नहीं हरीराम। आज शाम को एक सभा है। उसमें बड़े मार्के की बातें होंगी। वहीं जाऊँगा।"

जरा चौंककर हरीराम ने कहा—"फिर वही सब सभा-अभा लगाई। क्या खलीफत में अब कुछ बाक़ी है ?"

"चुप, चुप।" मंगल ने जरा गंभीरता के साथ डाँटा। "वह सब कुछ नहीं है। जाति की सभा है, आज बाइकाट की पूर्णाहुति है।"

कुछ न समझकर हरीराम ने पूछा—"उसमें क्या होगा लल्ला।"

"उसमें यह होगा हरी कि तुम जाति में फिर मिला लिए जाओगे।" मंगल बोला।

"परंतु मैं बिरादरीवालों को" हरीराम ने कहा—"शराब-कबाब नहीं पिलाऊँगा, चाहे माले जाति में मिलावें, चाहे डाले रक्खें।"

इसके बाद हरीराम चला गया।

मंगल सोचने लगा—"दर्शन करूँगा, तो नवलबिहारी के मंदिर के ठाकुरजी का : नहीं किसी मंदिर में न जाऊँगा। इस पाजी ने मेरी मा का अपमान किया है, देखूँगा। यदि जीवित रहकर नवलबिहारी को धूल न चटाई, तो ऐसे जीवन पर सौ बार धिक्कार है!"

(४२)

लड़कों को भय था कि वैद्यराज सभा के ठीक समय पर किसी मरीज़ की देख-भाल के लिये न चल दें, इसलिये कुछ लड़के उनकी ख़ास निगरानी के लिये औषधालय पर धरना देकर बैठ गए। बड़ी उम्र के बहुत-से लोगों की रुचि भी बाइकाट को ख़त्म कर देने की ओर थी, इसलिये लड़कों को किसी विशेष विघ्न-बाधा का सामना नहीं करना पड़ा।

पंडित नवलबिहारी मिलने के लिये आए। लड़के उनके आगमन का अभिप्राय ताड़ गए। उन्होंने कह दिया कि मरीज़ों को देखने गए हैं। वह न माने। उनकी पुकार को वैद्यराज ने भीतर से सुन लिया। पर बाहर न आए। नवलबिहारी उदास होकर घर लौट गए।

शाम को सभा हुई। ज़ोर का इश्तिहार छपवाकर बाँटा गया।

रामसहाय को मालूम भी न हो पाया। जब सभा का अधिवेशन आरंभ होने को हुआ, तब उन्हें विज्ञापन पढ़ने को मिला। क्षुब्ध हुए, क्रुद्ध हुए, और तुरंत शांत भी हो गए।

कहने लगे—"छपाना ही था, तो मुझे दिखलाकर छपवाते। बिना मेरे पूछे ही तुम लोगों ने इसमें यह लिख दिया है कि कल सबेरे देव-दर्शन पं० नवलबिहारी के मंदिर में किया जायगा। जैसे वह मंदिर मेरे बाप का हो।"

"न सही।" कई गलों से अवाज़ निकली—"हम सबके बापों का तो है।"

इसके बाद एक उपस्थित वयोवृद्ध ने कहा—"व्यर्थ का झगड़ा लगा रक्खा है। युग के अनुसार आचार-विचार बदलते रहते हैं। धर्म अवश्य अटल और अचल रहता है। खाना-पीना इत्यादि आचार की बात है, धर्म की बात नहीं।"

इन महाशय का एक लड़का मंगल के हाथ का परोसा हुआ प्रायश्चित्त के पूर्व-वर्णित भोज में खा आया था।

वैद्यराज फिर किसी बहस में नहीं पड़े। काररवाई शुरू हो गई। सबसे पहला प्रस्ताव बहिष्कार को अंत कर देने के विषय में उपस्थित हुआ। सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ। दूसरा प्रस्ताव नवलबिहारी के मंदिर में देव-दर्शन के विषय में पेश हुआ। वह भी सर्व-सम्मति से पास हुआ।

एक ऐंचकताने ब्राह्मण ने, जिनका थोड़ा-सा परिचय

पहले भी दिया जा चुका है, खड़े होकर कहा—"मंगल से वचन लिया जाय कि आगे फिर कभी ऐसा न किया जायगा।"

"क्या न किया जायगा?" सभापति ने पूछा।

"यही कि फिर कभी गोलमाल न करेगा।" उत्तर दिया गया।

इस पर लड़कों ने तालियाँ पीट डालीं। वह महाशय अपनी जगह पर छिप-लुककर बैठ गए। लड़कों पर सभापति की फटकार पड़ी।

पीताराम भी सभा में था। बोला—"क्यों साहब, जो लोग अब भी हमारा साथ न देंगे, उन्हें दंड दिया जायगा?"

सभापति ने हँसकर कहा—"वे हैं कितने? जो साथ न देंगे, वे अपना बहिष्कार अपने आप करेंगे।"

हेतसिंह ने कहा—"परंतु इतना मैं अवश्य कहूँगा कि यदि पं० नवलविहारी न मानेंगे, तो उनका बहिष्कार अवश्य करना पड़ेगा।"

मंगल इस प्रस्ताव पर उपस्थित जनता की क्या सम्मति होती है, इसे सुनने के लिये बहुत उत्सुक हुआ।

रामसहाय बोले—"ऐसी बातें इस सभा में नहीं करनी चाहिए। हम लोग वैमनस्य बढ़ाने के लिये इकट्ठे नहीं हुए हैं।"

बाबूराम एक कोने में से बोला—"पं० नवलविहारी ने तो बहुत एका बढ़ाने की कोशिश की है।"

इस पर "चुप-चुप।" की कई आवाज़ें उठीं। हेतसिंह ने प्रस्ताव पेश किया कि मंगल के मुँह से कुछ बातें सुनी जायँ। कुछ लोगों ने समर्थन भी किया, परंतु बहुत-से लोगों ने अनिच्छा प्रकट की। मंगल ने भी स्वीकार नहीं किया। इसके बाद सभापति के गले में गजरे डालकर सभा विसर्जित हुई।

(४३)

सभा-स्थल से लौटकर मंगल अपने ठहरने की जगह नहीं गया। घर पहुँचा। दरवाज़े पर पुकार लगाकर पौर में जा बैठा। फूलरानी ने पूछा—"सभावालों ने अब की बार क्या किया लल्ला ?"

"कल नवलविहारी के मंदिर में हम लोग दर्शन करने जायँगे, और चरणामृत लेंगे।" मंगल ने उत्तर दिया।

"वैसे तो देव-दर्शन सदा ही सुखदायक है, तो भी प्रायश्चित्त के संबंध में उसके पवित्रकारी प्रभाव पर हठ करने से तुम्हें भला न लगा होगा। परंतु लल्ला, भगवान् का स्मरण सब दशाओं में अच्छा होता है।"

"हाँ मा, ख़ास तौर पर नवलविहारी का दर्प भी यदि उससे नष्ट हो, तो उसका मूल्य और भी बढ़ जाता।"

मा ने बेटे का हाथ पकड़कर कहा—"तेरी पागलों-जैसी बातें न गईं।"

"जाति से बाहर ही बना रहता, तो तुम्हारे अपमान की घड़ी न आती मा।" मंगल उदास होकर बोला।

फूलरानी ने धीरे से मंगल को एक थप्पड़ मारकर कहा—"फिर वही खब्त ! जाति से बाहर क्यों बना रहता रे ? क्या तेरे मा नहीं है ? क्या तेरे धर्मपत्नी नहीं है ? जिसके कोई न हो, वह जाति से अलग रहे।"

इस दुलार से मंगल की उदासी कम न हुई। और अधिक उदासी से बोला—"इस जात-पाँत में बने रहने का बहुत मूल्य देना पड़ता है मा। ज़रा-ज़रा-सी बात पर लोग जान लेने और देने पर तैयार रहते हैं। अच्छे, पढ़े-लिखे, भलेमानस जात-पाँत की समस्या उपस्थित होने पर बछिया के ताऊ बन जाते और ऐसी डपोरशंखी बातें हाँकते हैं कि संसार-भर उन पर बिना हँसे न रुके। क्षुद्र-सी-क्षुद्र बात के लिये सभा और पंचायत तथा इतना बखेड़ा खड़ा किया जाता है, मानो दिग्विजय की तैयारी की जा रही हो ! बिल्ली के शरीर का यदि किसी ने एक बाल भी नोच डाला, तो बस, सारी जात-पाँत में वह उथल-पुथल मच जाती है, मानो संपूर्ण देश पर दस-पाँच करोड़ दुश्मनों ने हमला कर दिया हो। और चाहे जिस तरह की मुसीबतें व्यक्तियों या समाज पर आवें, परंतु इन जात-पाँतवालों के कान पर जूँ भी न रेंगेगा। किसी ढकोसले में रत्ती-भर का भी अंतर पड़ जाय, तो फिर देखो, कैसी ले-दे मचाई जाती है। छिपे-लुके चाहे जो अनाचार चाहे जो कोई किया करे, रुपएवाले या बड़ी रिश्तेदारीवाले खुल्लम-खुल्ला भी दुराचरण करें, तो लोग बग़लें झाँककर निकल जाते

हैं। परंतु हम-सरीखे लोगों के लिये जात-पाँत पहाड़ों को उछा-लने के लिये कमर कसे खड़ी है।"

कुछ अधीर होकर फूलरानी बोली—"लल्ला, तू क्या यह समझता है कि यह पौर कोई सभा-स्थान है, और यहाँ श्रोता-गण खचाखच भरे हैं? तेरी यह व्याख्यानबाज़ी मैं एक चाँटे में भगा दूँगी।"

अब की बार मंगल हँस पड़ा।

बोला—"मा, तुम्हीं लोग इस जर्जर समाज को सँभाले हुए हो, नहीं जात-पाँतवालों ने तो न-मालूम कब का इसे ख़ाक कर दिया होता।" फिर तुरंत गंभीर होकर कहने लगा—"मा, तुम उस नीच नवलविहारी के पास किस वास्ते गई थीं? मर जाय ऐसा लड़का, जो झाड़ू के झाड़ने से जिए।"

फूलरानी ने मंगल का धीरे से कान पकड़ लिया। बोली—"तू यह न समझ लेना कि बड़ा हो गया है, ब्याहा-व्याहा है, बड़ा अक़लवाला है, बड़ा बातूनी है। ख़बरदार, जो ऐसी बात फिर कभी कही। बोल, कभी कहेगा?"

माता के इस दंड से मंगल का मुख-मंडल प्रदीप्त हो गया। खिली हुई आँखें मा की ओर फेरकर, मुस्किराते हुए उसने कहा—"मा, तुम्हारे पैर छूता हूँ, माफ़ करो। आगे कभी न कहूँगा। परंतु तुम भी अब कभी नवलविहारी के पास किसी याचना के लिये न जाना।"

मा ने बेटे का सिर अपने कंठ से लगाकर कहा—"न

जाऊँगी मेरे लाल। पर क्या करूँ, तुम्हारे और तुम्हारे दादाजी की उदासी नहीं देखी जाती थी।"

अपना सिर छुटाकर मंगल ने कहा—"मा, नवलविहारी के किए का प्रतिशोध कल करूँगा। वह हम सबको पतित समझता है। आज की सभा के बाद से वह पतित समझा जाने लगा है। कल हम लोग उसके मंदिर में जाकर उसके ठाकुरजी के दर्शन ही न करेंगे, बल्कि ठाकुरजी का प्रत्यक्ष आलिंगन करेंगे।" और, किसी अलौकिक दृढ़ता से उसके नेत्र एक पल के लिये आलोकित हो गए।

"यानी तू या तेरे मित्र लोग ठाकुरजी को सिंहासन से उठाकर कहीं फेंक देंगे। मेरी कोख से जन्म लेकर यह कृत्य!" फूलरानी बोली—"यह नवलविहारी के साथ वैर चुकाना कहलाएगा या सारे हिंदू-समाज को पैरों-तले रौंदना समझा जायगा?"

अपनी मा के मुख पर ऐसा प्रचंड तेज मंगल ने कभी न देखा था। वह मा को सदा स्नेह का भांडार खयाल किया करता था। वह कभी भान नहीं कर सकता था कि फूलरानी रौद्र रूप भी धारण कर सकती है।

अपनी दृढ़ सम्मति के विश्वास पर हरएक को ज्ञात या अज्ञात गर्व होता है। वह गर्व दूसरों की सम्मति की दृढ़ता को उपहास में उड़ा देने की प्रेरणा किया करता है। उस प्रेरणा का बाह्य लक्षण हलकी चंचलता और परिहास-प्रवृत्ति होती

है। मंगल में भी वह काफी मात्रा में थी। परंतु मा के इस छोटे-से वज्र-वाक्य से वह जड़-समेत हिल गई।

मंगल बहुत अनुनय के साथ हाथ जोड़कर बोला—"माजी, मैंने तुम्हारा दिल दुखाने को नहीं कहा। तुम्हारे बतलाए हुए धर्म पर मेरी श्रद्धा है। परंतु नवलविहारी ने तुम्हारा जो अपमान किया है, उसमे मेरा कलेजा आज कई दिन से जला जा रहा है।"

फूलरानी ने मंगल के सिर पर हाथ फेरकर कहा—"वह सब कुछ नहीं था। भूल जाओ मेरे लल्ला।"

"भूल जाऊँगा मा, परंतु यह अपराध क्षमा करो।"

मा मुस्किराकर बोली—"बड़ा बातूनी है।"

उस जरा-सी मुस्किराहट से मंगल को जितनी शांति मिली, उतनी शायद उस संपूर्ण प्रायश्चित्त से न मिली होगी।

फूलरानी ने एक क्षण बाद दुलार के साथ कहा—"अब आज से उस घर में न रहना। यहीं अपना सब सामान मँगवा लो। कल सवेरे मंदिर में बहू की गठजोड़ी से दर्शन करना होगा। मैं भीतर जाती हूँ। तू यहीं बैठना।" वह चली गई।

मंगल ने कहा—"कल आ जाऊँगा मा, आज नहीं।" बाहर जाने को हुआ था कि कहीं से सोमवती आ गई। दुबली हो गई थी, और हाथ जोड़े और भी दुबली मालूम होती थी। परंतु मंगल बिना एक शब्द कहे-सुने वहाँ से चला गया।

(४४)

बहिष्कार को अंत कर देने का प्रस्ताव स्वीकृत करनेवाली सभा के बाद ही अधिकांश जनता में एक निश्चित दिशा की ओर प्रवृत्त हो जाने की दृढ़ता आ गई हो, सो बात न थी। बहुत-से लोग अब भी नवलविहारी को एक बहुत ऊँचे पहाड़ के शिखर पर चढ़ा हुआ देखते थे। उस चोटी को व अपने लिये अप्राप्य या दुष्प्राप्य समझते थे। रह-रहकर नवल-विहारी के दृढ़ सिद्धांत की ओर जी खिंच जाता था, परंतु परिस्थिति उन्हें अपनी दशा पर संतोष करने के लिये विवश कर देती थी। जो कुछ हुआ, अच्छा नहीं हुआ, यह बात मन को कोंचती थी। परंतु और कुछ कर भी नहीं सकते थे, अंत में इस युक्ति से मन को मनाना पड़ता था। लड़के अवश्य बेखटके और निश्चित थे। वे नवलविहारी को किसी चोटी पर खड़ा नहीं देखते थे, परंतु उन्हें पतित या बुरा कह डालने पर भी विवेक को ग्लानिमय होना पड़ता था। नवल-विहारी की अटलता को वे युग-विरुद्ध कह-कहकर मज़ाक़ उड़ा सकते थे। मज़ाक़ उड़ाते भी थे। परंतु इस तरह की ठठोलियों से उनका मनोरंजन एकाध क्षण के लिये ही होता था। सिद्धांत की उस अटलता में एक आकार-रहित, अलक्ष्य भयानकता थी।

नवलविहारी ने सभा का निर्णय सुनकर अपना एक निश्चय किया। रात को ही थाने में रिपोर्ट की कि कल सबेरे

मेरे मंदिर पर विरुद्ध दलवाले लोग आक्रमण करेंगे। हेतसिंह, टीकाराम और पीताराम के नामों को रिपोर्ट में विशेष महत्त्व दिया गया। रामसहाय वैद्य का नाम रिपोर्ट में न था।

परंतु पुलिस ने सवेरे उतनी रौद्रता या तत्परता नहीं दिखलाई, जितनी की आशा टीकाराम कर रहे थे। सभा में जितनी जनता उपस्थित थी, उतनी तो देव-दर्शन के लिये नहीं आई, लेकिन तो भी खासा जमाव था। आगे-आगे मंगल, उसकी पत्नी, मा और पिता थे। मंगल की पीली धोती की गाँठ सोमवती की गुलाबी चादर से बँधी थी। पीछे बाबूराम, हेतसिंह, पीताराम, हरीराम इत्यादि थे। भीड़ में युवकों की संख्या अधिक थी। इन्हीं के बीच में रामसहाय वैद्य भी थे। ऐसा जान पड़ता था कि भाग जाना चाहते हैं, परंतु चेहरे पर सिवा श्रद्धा के और किसी भाव को न आने देने की वह पूरी चेष्टा कर रहे थे।

उधर नवलविहारी भी पाँच-सात मनुष्यों के साथ एक ओर खड़े थे। उनमें सबसे आगे लखपत था।

ठाकुरद्वारे के सामने एक दालान थी। दालान के सामने बड़ा चौक। चौक में भीड़ के आने पर नवलविहारी ने कड़ककर कहा—"यहीं से सब लोग दर्शन कर लो। यहीं चरणामृत मिलेगा। आगे मत बढ़ना।"

सब सन्न रह गए। सब ठिठक रहे। सब चुपचाप।

दो पल बाद रामसहाय ने बड़े धैर्य के साथ कहा—"क्या

हर्ज है, पंडितजी जैसा कहते हैं, वैसा ही करो। यहीं से दर्शन कर लो, और चरणामृत ले लो।"

नवलविहारी ने ज़रा मुस्किराकर कहा—"मैंने आपके लिये नहीं कहा पंडितजी।"

रामसहाय बोले—"ख़ैर, किसी के लिये कहा सही, यहाँ कोई झगड़ा करने थोड़े ही आया है।"

इतने में एक हिंदू पुलिस-अफ़सर आ गया। बिना ज़ोर-शोर के, परंतु प्रभुत्व के स्वर में बोला—"शांति के साथ अपना काम करके आप लोग जायँ। पंडित नवलविहारी के मंदिर में कोई ऐसी बात न हो, जिसमें उनका जी दुखे।"

हेतसिंह ने कहा—"हम लोग ठाकुरद्वारे की देहली के पास से दर्शन करेंगे।"

नवलविहारी उद्दंडता के साथ बोले—"वहाँ आप न जा सकेंगे।"

"क्यों ?" हेतसिंह ने कड़े होकर पूछा।

"क्यों न जा सकेंगे ?" पीताराम ने गरम होकर प्रश्न किया।

परंतु पूर्व इसके कि नवलविहारी कोई उत्तर दें, मंगल की मा ठाकुरद्वारे की दालान में पहुँच गई। रामसहाय अवसर पाकर पीछे से खिसक गए, क्योंकि उनका बॉडीगॉर्ड, लड़कों का दल, एकटक फूलरानी की इस कृति को देखने लगा था।

रामसहाय को खिसकता हुआ देखकर नवलविहारी तर्जनी उँगली से वर्जन का काम लेते हुए मंगल की मा की ओर बढ़े।

मंगल तुरंत अपनी मा के पास जा पहुँचा। गठ जोड़े से बँधी हुई सोमवती भी उसके ठीक पीछे-पीछे वहीं पहुँच गई।

मंगल बोला—"आज यहाँ मेरी मा अकेली नहीं है।"

नवलविहारी ने कड़ककर कहा—"खबरदार, जो चबड़-चबड़ की। आँगन में जाकर खड़े होओ। स्त्रियाँ साथ हैं, नहीं तो होश ठिकाने कर देता।"

"मैं भी आया।" हेतसिंह बोले।

"मैं भी।"

"और मैं भी।" क़रीब-करीब सभी ने एक साथ कहा, और ठाकुरद्वारे में घुस आए।

पुलिस-अफ़सर शांति के साथ बोला—"क्यों नाहक़ आपस में लड़ते हो? पूजा करके शीघ्र लौट जाओ।"

टीकाराम बोले—"केवल पूजा के लिये आए हैं, परंतु पंडितजी व्यर्थ रुष्ट हो रहे हैं। चरणामृत लेकर अभी लौटे जाते हैं।"

"यहाँ चरणामृत न मिलेगा।" नवलविहारी ने वज्र-नाद किया।

"हम स्वयं चरणामृत ले लेंगे।" मंगल ने भी तीक्ष्ण स्वर में कहा, और वह ठाकुरद्वारे की देहली की ओर बढ़ा।

फूलरानी धीरे से मंगल से बोली—"लल्ला, मूर्ति के पास मत जाना। जो कहा था, याद है?"

मंगल ठिठक गया। उसने अपनी मा से कहा—"मैं केवल चरणामृत-पान के लिये उधर जाना चाहता हूँ।"

"कोई दूसरा ब्राह्मण देगा, यदि पंडितजी न देंगे तो।" फूलरानी बोली।

यह वार्तालाप निकटवर्ती लोगों ने भी सुना। पीताराम ने टीकाराम से कहा—"आप पंडित हैं, ज्योतिषी हैं। आप इस सबको चरणामृत दीजिए।"

टीकाराम चरणामृत का पंचपात्र उठाने के लिये आगे बढ़े। नवलबिहारी ने हाथ पकड़ लिया। हेतसिंह उन दोनों की ओर बढ़े। पुलिस-अफ़सर ने बीच-बिचाव के लिये हाथ उठाया।

इसी बीच में मंगल ने चरणामृत का पंचपात्र उठाकर अपने हाथ में ले लिया। चमची से लेकर थोड़ा-सा स्वयं पिया। अपनी मा को दिया। फिर अपनी पत्नी को। सोमवती ने पान करके एक बार अपने पति की ओर देखा। उस एक कटाक्ष में न-मालूम कितना संतोष, कितना अभिमान और कितना गौरव था। मंगल ने एक बार अपनी पत्नी की ओर फिर देखा। उसने आँखें नीची कर ली थीं, फिर उसने ठाकुरजी की ओर दृष्टिपात किया।

बाबूराम चिल्लाकर बोला—"अब हमको भी तो दो दादा।"

टीकाराम को छोड़कर इतने में नवलबिहारी पंचपात्र की

ओर झपटे। गठजोड़े संयुक्त होने के कारण सोमवती मंगल के पास ही खड़ी थी। नवलविहारी के पास न आने देने के लिये सोमवती ने केवल अपना हाथ चादर से बाहर निकालकर उठाया। हाथ में थोड़ी चूड़ियाँ थीं, और कोई आभूषण न था। एक उँगली में मंगल की दी हुई अँगूठी थी। गोरा-गोरा, कोमल, नन्हा-सा हाथ। जैसे पद्म। नवलविहारी को उस सौंदर्य की शिखा में आग की लौ-सी दिखलाई पड़ी, और वह पीछे हट गए, मंगल से शीघ्र चरणामृत लेकर दावूराम नवलविहारी के सामने आ धमका।

बोला—"पंडितजी, क्यों ऊधम करते हो?" उसके पास और युवक भी पहुँच गए।

नवलविहारी ने वहीं खड़े-खड़े कहा—"इन पाजी लौंडों की यह हिम्मत! धर्म को ग़ारत किया, अब अपने बड़े-बूढ़ों के अपमान पर कमर कसी है।" वह एकाध को धौल-धप्पा भी दे देते, परंतु युवकों का समुदाय बहुत था, और उन्हें तुलसी-दासजी की उस चौपाई का यह चरण याद था—'बरै, बालक एक स्वभाऊ।'

तब लड़कों को छोड़कर पंचपात्र छीनने के लिये नवल-विहारी मंगल के पास ऐसे स्थान पर आए, जहाँ सोमवती या फूलरानी से उनकी मुठभेड़ नहीं हो सकती थी।

मंगल से बोले—"अपना नाश किया था, सो उसका तुम्हें यह प्रायश्चित्त करना पड़ा, अब सारे समाज का नाश करके

कौन-सा प्रायश्चित्त करोगे ?" और पंचपात्र की ओर हाथ बढ़ाया। मंगल ने हाथ पीछे किया। सोमवती ने पंचपात्र अपने हाथ में ले लिया।

मंगल ने कहा—"तुम्हारे-सरीखे संसार-डुबोइयों की अक़्ल अगर मैंने ठीक कर दी, तो हमारे समाज का बेड़ा पार है।"

एक युवक ने बड़ी बेतकल्लुफ़ी के साथ कहा—"पंडितजी, क्यों चाँय-चाँय मचाए हुए हो। भाई के हाथ का चरणामृत बँट चुका, अब ज़रा अपनी बहन के हाथ का भी पी लेने दो।"

नवलविहारी की आँखों में ख़ून आ गया। उनकी सहज, सरल मुस्किराहट, जान पड़ता था, मानो दीर्घकाल से लुप्त हो गई हो। आकृति बहुत भयानक हो उठी।

लखपत ने उनको पकड़कर कहा—"पंडितजी, यहाँ से चलिए। ये लोग बलवा करने के लिये आमादा हैं। मंदिर अपवित्र हो गया है। कल इसे शुद्ध करावेंगे।"

एक लड़का ठहाका मारकर बोला—"वाह रे भैया खूँसट !"

पंडित नवलविहारी आग उगलनेवाली दृष्टि से इन सब पूजकों की ओर देखते जाते थे, और उन्हें लखपत-समेत उनके दो-तीन इष्ट-मित्र बाहर घसीटे लिए जाते थे। लड़के मुश्किल से अपनी हँसी रोक सके। पुलिस-अफ़सर अभी नहीं गया था। बोला—"लो, अब यहाँ से पधारो। नहीं तो सचमुच बलवा हो जायगा। यदि पंडित नवलविहारी दो-चार लठैत यहाँ लिवा लाएँगे, तो ख़ून-ख़राबी हो जायगी।

देखिए, हमने कोई रोक-टोक आपके काम में नहीं की। अब इतनी हमारी मान जाइए।" इसकी उन लोगों को जरूरत न थी। नवलविहारी के उधर प्रस्थान करते ही युवक सोमवती के हाथ से चरणामृत लेने लगे। टीकाराम एक ओर हो गए जब सब लोग इस विधि को पूरा कर चुके, शीघ्र मंदिर से बाहर निकल आए।

घटना की उत्तेजना और विजय की चंचलता के समाप्त होने पर कुछ लोग यह बात सोचते रहे कि कार्य शांति के साथ न हो पाया।

(४५)

रात हो गई थी। चंद्रमा उदय होने को था। पूर्व-दिशा उसी तरह मुस्किराती हुई-सी मालूम पड़ रही थी, जैसे वरदान के पहले किसी ऋषि के मुख पर की हास्य-रेखा।

नवलबिहारी अपने मकान की एक खुली जगह में लखपत के साथ बैठे हुए थे। और कोई न था। बातों के सिलसिले में लखपत ने कहा—"पंडितजी, पुलिसवालों ने भी कुछ सहायता नहीं की, जरूर कुछ रिश्वत खा गए हैं।"

"मैं साहब के बँगले पर मिल आया हूँ। उन्होंने कहा है कि शांति-भंग का मुक़दमा चलाओ, जमानत-मुचलके की काररवाई की जायगी।"

"इससे भी न मानेंगे, तब कुछ और देखा जायगा।" थोड़ी देर चुप रहने के बाद धीरे से और बड़ी गंभीरता के साथ

नवलविहारी ने कहा—"अभी जब मैं ठाकुरजी की आरती उतारने गया, एक बड़ी विचित्र बात देखी। जान पड़ता है, कोई बड़ा अनर्थ होनेवाला है। मैंने मूर्ति के मुख-मंडल पर ऐसा भाव पहले कभी नहीं देखा। इतना बड़ा हो गया, आज तक कभी सुना भी नहीं।"

पास खिसककर लखपत ने बड़े चाव के साथ पूछा—"वह क्या था पंडितजी ?"

"आरती के समय ठाकुरजी ने आँखें मीच लीं। मैं खड़ा रहा। बहुत डरा। किसी तरह जल्दी-जल्दी पूजा करके वहाँ से भागा। जब आरती समाप्त हो गई, देखा, तो आखें ज्यों-की-त्यों खुली हुई हैं, परंतु मुख-मंडल पर गहरी उदासी। सेठजी, देवता का अपमान कोई सहज बात नहीं। देखें, हम सबका क्या होनेवाला है। चाहे कोई पापी हो या पुण्यात्मा, पर भगवान् सबकी रक्षा करें।"

भयभीत स्वर में लखपत बोला—"महाराज, आपने तो थोड़े-से शब्दों में बात समाप्त कर दी, परंतु यहाँ शरीर-भर में रोमांच हो आया है। जब बस्ती में यह खबर फैलेगी, सनसनी मच जायगी।"

नवलविहारी ने बड़े अनुरोध से कहा—"नहीं भैया, किसी से चर्चा मत करना। अथवा करो, तो सिवा इष्ट-मित्रों के और किसी से मत कहना। क्या इस कलियुग में कोई तुम्हारी बात का विश्वास करेगा ? लोग कहेंगे हम लोगों की बनाई

हुई गप है। नास्तिकों की ऐसी भरमार है कि कहते नहीं बनता।"

"हम सबों को थोड़ा-थोड़ा-सा प्रायश्चित्त कर लेना चाहिए, क्योंकि सहवास-दोष से भी अपराध चढ़ता है।" लखपत ने कहा।

नवलविहारी कुछ और ही सोच रहे थे। बोले—"मैंने मंदिर के माली से उसी समय सब कह दिया था। उसे हिदायत भी कर आया हूँ कि रात-भर जगता रहे, और सबेरे बतला जाय कि और कोई उपद्रव तो नहीं हुआ। वैसे तो शायद वह सो जाता, परंतु इतना घबरा गया है कि अवश्य ही रात-भर जागेगा।"

"पंडितजी," लखपत ने पूछा—"और किसी उपद्रव की आशंका है?"

"कौन कह सकता है?" नवलविहारी ने उत्तर दिया—"देवता की गति को कौन जानता है? मैं यह निरीक्षण हफ़्ते-पखवारे तक करूँगा। औरों का जो कुछ भी हो, पर भाई, अपनी कुशल की ओर भी तो देखना है। तुम लोगों ने पकड़ लिया, नहीं तो उन दो-तीन छोकरों का सिर चकनाचूर करके सब विपद् को टाल देता।"

लखपत डरकर बोला—"पंडितजी, हमने तो भला सोचकर किया। लड़ाई बढ़ जाती। दोनो ओर सिर-फुटौअल होता। अपने मंदिर की बदनामी होती। पुलिसवालों का कुछ ठीक

नहीं, शायद हमें-आपको भी घर लेते। यदि इसमें मुझसे कोई अपराध बन गया हो, तो कल दिन-भर उपवास रक्खूँगा, और गंगा-जल पियूँगा।"

"गंगा-जल का पान तो सदा ही हितकारी है।" नवल-विहारी ने कहा—"परंतु तुम्हारे लिये कोई भय की बात नहीं।"

इसके बाद वार्तालाप समाप्त हो गया, और लखपत राम-कृष्ण का नाम लेता हुआ घर चला आया। चाँदनी छिटक आई। सड़कों पर शांति होने लगी। कुछ समय के अनंतर सन्नाटा हो गया। दिन-भर के हारे-थके लोग सो गए। परंतु जिनको नींद नहीं आई, उनमें से एक लखपत था, और दूसरा नवलविहारी के मंदिर का माली।

(४६)

नवलविहारी की बात के पक्ष में भी बहुत आदमी थे। और उनके विरोधियों में कई ऐसे थे, जिनकी प्रतिकूलता में किसी तरह की प्रखरता न थी। उनके पक्ष के आदमियों में से अनेक उनके मंदिर में प्रातःकाल दर्शनों के लिये, जैसे रोज़ आते थे, आए। आज नवलविहारी को स्नानादि में विलंब हो गया था, परंतु लोग लौटकर नहीं गए। आगंतुक मंदिर के माली की आश्चर्य-जनक बातें सुनते रहे। उसने आरती के समय मूर्ति की आँख मिच जानेवाली बात ब्योरे के साथ सुनाई। कहा—"मैंने खुद देखा है। आज रात-भर जागता रहा हूँ कि देखूँ और क्या होता है। मंदिर के ऊपर विमान उड़ते रहे हैं

चिल्लाना चाहा, तो ऐसा मालूम हुआ, जैसे किसी ने गला दबा लिया हो। पंडितजी या तो इसका कुछ उपाय कर दें, नहीं तो मुझको छुट्टी दे दें। भगवान् हाथ-पर बनाए रक्खेंगे, तो पेट के लिये बहुत कर लूँगा।"

देखते-देखते थोड़ी देर में इस बात को सुनने के लिये एक बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई। जिन लोगों को बहुत जरूरी कामों के लिये जाना था, वे अधिक समय तक न ठहरकर यह कहते हुए चले गए कि शायद ऐसा हुआ हो, परंतु असंभव जान पड़ता है।

इतने में स्नानादि करके नवलविहारी रेशमी वस्त्र पहने पूजन के लिये आए। चारो ओर से सवालों की झड़ी लग गई। उनके मुँह पर नहाने के बाद भी उदासी बनी हुई थी, परंतु सबकी बातों का जवाब देते रहे। मंदिर के चौक और दालान में बड़ी भारी भीड़ इकट्ठी थी। नवलविहारी ने उनमें से एक को भी आमंत्रित नहीं किया था। प्रश्नोत्तरों का अंत होता हुआ न देखकर नवलविहारी ने माली से फूल लाने के लिये कहा, और बोले—"आज अतिकाल हो गया है। आप लोग क्षमा कीजिएगा। पूजा-पाठ करके दफ्तर जाना है।" जो मनुष्य वहाँ एकत्र हो गए थे, उनको इस बात का बड़ा कौतूहल था कि मूर्ति ने किस तरह आँख मीची होगी—शायद इस समय भी कोई चमत्कार दिखलाई पड़े। इसलिये पट खुलने तक मंदिर में बने रहे।

माली जैसे ही फूल लाया, नवलविहारी ने ताला खोलकर पट उघाड़े।

पटों के खुलते ही नवलविहारी और उपस्थित जनता को जो कुछ दिखलाई पड़ा, उससे आश्चर्य, ग्लानि और भय का ठिकाना न रहा।

प्रधान मूर्ति के पैर ऊपर थे, और सिर नीचे था!

नवलविहारी के हाथ से फूल और पूजन-सामग्री नीचे जा गिरी, और वह सिर पकड़कर बैठ गए।

भीड़ में कोई चिल्लाने लगा, कोई रोने लगा, कोई स्तुति करने लगा। डर के मारे कुछ लोग भाग भी गए। नवलविहारी ने काँपते हुए हाथ से पट ज्यों-के-त्यों बंद कर दिए, और जैसे-का-तैसा ताला बंद कर दिया।

(४७)

दर्शन करके मंगल घर आया। परंतु उसके मन में हर्ष न था। हरीराम, बाबूराम इत्यादि सब प्रसन्न थे। और लोग भी सामूहिक प्रसन्नता में अपने हर्ष को पूरा कर देने के लिये आ गए। दिन-भर लोगों का ठाठ अपने पक्ष की प्रबलता और विजय पर गर्वोक्तियाँ करता रहा। परंतु टीकाराम ने सिवा साधारण आगत-स्वागत और हाँ-नहीं के और कुछ नहीं किया। मंगल अलग एक कमरे में अपने को बंद करके विगत घटना और भविष्य की चिंता में डूबता-उतराता रहा।

संध्या के उपरांत अपने शयनागार में गया। सोमवती घूँघट खोले थी। मुख-मंडल हर्ष की किसी छाया में छिपा-सा जाता था। हाथों में फूलों की माला लिए दरवाजे के जरा

पीछे खड़ी थी। मंगल के प्रवेश करते ही ताककर माला इस तरह डाली कि कुछ गले के पीछे झूमने लगी और अधिकांश छाती पर। इसके बाद मंगल के पैरों पर गिरने को हुई।

मंगल ने तुरत हाथ से थाम लिया। गंभीर होकर बोला—यह किसलिये? मैंने कौन-सा दिग्विजय किया है? फिर से अपनी जाति में आ मिला हूँ उसके लिये इतना तूफ़ान?"

सोमवती की मुस्किराहट चेहरे पर से न गई। बोली—"मेरे तो भाग्य का उदय हुआ। परंतु यह तो बतलाइए कि आपने इस समय गंभीरता का ऐसा स्वाँग किसलिये भर रक्खा है?"

"इसलिये कि यदि कल मैं फिर किसी दूसरे धर्म में पकड़ लिया जाऊँ, तब तुम कितने कोस की दूरी से बातचीत करोगी?"

"परंतु प्रायश्चित्त करके आप फिर हम लोगों में आ मिलेंगे, और मैं फिर इसी तरह की जयमाल गले में डालूँगी।"

"गोया आप इतना फूल सदा ही उजाड़नी रहेंगी, और 'दूर, दूर,' कहने से भी बाज़ नहीं आएँगी।" मंगल ने और भी गंभीर होकर कहा।

"ओहो," सोमवती हँसकर बोली—"गोया कहाँ से सीख आए हो?"

बहुत चेष्टा करने पर भी मंगल के होठों का एक कोना हलकी मुस्किराहट में फँस गया। उसे दबाने की चेष्टा करते हुए बोला—"मेरे हाथ से पंचपात्र छीनकर खूब परिचितों

और अपरिचितों को चरणामृत पिलाया। दादाजी की भी परवा नहीं की।"

"अच्छा ! इसीलिये आपकी त्योरियाँ बिगड़ी हुई हैं। उस पंचपात्र की रक्षा करने का पारितोषिक तो देने से रहे, उलटा दोषारोपण करने लगे। पर यह बीमारी तो आपकी पुरानी है।"

फिर एक क्षण बाद कहा—"अब आप पलँग पर विराजमान हो जायँ। खड़े-खड़े पैर दर्द करने लगे होंगे।"

स्वीकृति का कोई लक्षण न दिखलाकर मंगल ने कहा—"आपकी बला से। आप अपने पद-पंकज सँभालें।"

सोमवती कोपाभिनय करती हुई बोली—"लो, अब बहुत बढ़-बढ़कर न बोलो, सीधी तरह से बैठते होओ, तो बैठ जाओ, नहीं तो..."

"नहीं तो ?" मंगल ने प्रश्न किया। गंभीरतर बनने की चेष्टा की, परंतु प्रयास करने पर भी न दमन की जानेवाली क्षीण मुस्किराहट ने गंभीरता की छाप बिगाड़ दी।

"आप जानते हैं कि मेरा नाम सोमवती है ?"

"यह नई बात ?"

"और, आप जानते हैं कि मैं इस घर की मालकिन हूँ ?"

"सो तो जब दस-बारह दिन पहले यहाँ से धक्के देकर निकाला गया था, तभी मालूम हो गया था।"

सोमवती की मुस्किराहट तिरोहित हो गई। बोली—"आपने मुझसे केवल 'स्त्री' कहा था।

मंगल का गंभीर स्वर हलका पड़ा। कहा—"आप वास्तव में पुरुष हैं, यह अभी देखने को बाक़ी है। है भी आपका बाह्य रूप कट्टर-से-कट्टर पुरुष से बढ़कर।"

सोमवती की बड़ी-बड़ी आँखों से दो बड़े-बड़े आँसू छलक आए।

कमरे में दिया जल रहा था। उसका प्रकाश मंगल के गले में पड़ी हुई माला के फूलों के जलकणों को आलोकित कर रहा था। उन आँसुओं में से प्रकाश की धारा-सी उमड़ रही थी। सोमवती के कपोलों पर जब वे ढलक पड़े, ऊषा की किरणों-जैसा उदय हो गया। मंगल को आभा के उस मंडल में संपूर्ण मुख परिवेष्टित-सा दिखलाई पड़ा। शयनागार महक और शुभ्रता से परिपूर्ण जान पड़ने लगा।

मंगल ने सोमवती को बलात् पलँग पर बिठला दिया।

बड़ी-बड़ी बरौनीवाले पलक नीचे करके सोमवती ने कहा—"यह क्या करते हो?"

"प्रायश्चित्त। कुछ अभी और शेष है।" मंगल भरे हुए गले से बोला, और घुटने टेककर पृथ्वी पर बैठ गया। सोमवती ने पलँग पर से उठ बैठने के लिये पूरा बल लगाया, परंतु मंगल ने उसके घुटनों को अपने हाथों से पकड़-कर दबा रक्खा था। असमर्थ रही।

इसी क्षण मंगल ने अपने हाथ जोड़ने के लिये बाँधे। व्याघ्र की तरह उछलकर सोमवती खड़ी हो गई। बोली—"क्या नरक में ठेलोगे?" और, तुरंत उसे उठाकर गले से लिपट गई। दोनो की आँखों से मिलकर आँसू बरसाए, परंतु धारा उनकी एक ही थी—एक ही होकर वह बही।

(४८)

शहर-भर में समाचार फैल गया। क़समें खा-खाकर कुछ लोग आँख-देखा सच्चा हाल बतलाने लगे। रात को आरती के समय मूर्ति उदास थी। माली ने ख़ुद देखा—वह सौगंद खाकर कहता था। पंडित नवलविहारी यत्न-पूर्वक पटों पर ताला डालकर घर आए थे। और सबके सामने उन्होंने ताला खोला था। मूर्ति औंधी देखी गई। अब भी ताला पड़ा है, और मूर्ति जैसी सबेरे देखी गई थी, वैसी ही अब भी दिखलाई पड़ सकती है। न ठाकुरद्वारे पर मंगल इत्यादि को जाने देते, न यह भयानक कांड उपस्थित होता। पं० नवलविहारी के हाथ से पतित-दूषित व्यक्तियों ने चरणामृत का पंचपात्र ज़बरदस्ती छीन लिया, और उनका भारी अपमान किया। इसीलिये देवता को बरदाश्त नहीं हुई।

उधर कुछ दूसरी तरह के युक्ति लड़ानेवाले भी थे। संख्या भी उनकी प्रचुर थी। नवलविहारी अपने अहंकार के वश टीकाराम की पार्टी को मंदिर में घँसने नहीं देना चाहते थे। घँस गए, तो ठाकुरद्वारे पर नहीं फटकने देना चाहते थे। वे

लोग न माने। चरणामृत भी बल-पूर्वक पी लिया। इसीलिये नवलविहारी और उनके नौकर ने मूर्ति की उदासीवाली गप तैयार की, और फिर मूर्ति को उलट डालने का भयंकर कुकृत्य किया। यह धारणा उत्तरोत्तर प्रबल होती चली गई।

जो लोग अटल रूप से नवलविहारी के प्रबल विरोधी थे, उन्होंने तेज दौड़-धूप जारी की। जगह-जगह नवलविहारी की सारी दुर्घटना का कारण बतलाया। बातचीत में विशेषणों के चुनाव पर अधिक ध्यान नहीं रक्खा। जो लोग विरोधी तो थे, परंतु क्षोभ-प्रदर्शन में बलिष्ठ न थे, उनके मुँह से भी धिक्कार के शब्द निकलने लगे। एक ही दो दिन में यह लहर इतनी प्रबल हो उठी कि बेचारे नवलविहारी को दफ़्तर जाना तक मुहाल हो गया। सारे शहर का ध्यान प्रायश्चित्त के औचित्य या अनौचित्य पर से टलकर इसी घटना और उसकी लौकिकता या अलौकिकता की ओर जा दौड़ा।

तीसरे दिन पंडित नवलविहारी समय से एक घंटे पहले ही दफ़्तर गए। दफ़्तर में भी उन्हें बहुत चैन न मिलता था, परंतु बस्ती की गरम अफ़वाहों से बचे रहते थे।

मार्ग में पीताराम मिल गया। प्रणाम करके सामने खड़ा हो गया। बोला—"आप तो पंडित कहलाते हैं, क्या ऐसा अनाचार आपको शोभा देता है?"

"क्या अनाचार जी?" नवलविहारी ने नाखश होकर कहा—"दफ़्तर जाने दो।"

"दफ़्तर तो आप नित्य जाया करते हैं, सो जायँगे ही, परंतु यह तो बतलाइए कि मूर्ति के खंडित करने का जो पाप लगता है, उसका क्या प्रायश्चित्त है ?"

"मूर्ति खंडित कहाँ हुई है ?" अनिच्छा होते हुए भी नवलविहारी ने उत्तर दिया—"देवता के कार्य पर क्या किसी का क़ाबू है ?"

पीताराम को इस उत्तर से कब संतोष होनेवाला था ? बोला—"पंडित जी, मानो या न मानो, मूर्ति तुम्हीं ने तोड़ी है, और इसका न्याय भी शीघ्र होगा।"

"ख़बरदार, जो गुस्ताख़ी की," नवलविहारी ने डाटकर कहा—"शांति-भंग का हमारा मुक़दमा तुम्हारे ऊपर दायर है। तुम मुझसे यहाँ बदला लेने आए हो, इसकी भी रिपोर्ट अभी थाने में जाकर करता हूँ।"

"शौक़ से रिपोर्ट करो।" पीताराम ने कहा—"शहर भर की पंचायत भी तुम्हारे मामले की जाँच करने के लिये बहुत शीघ्र होगी।"

भीड़ इकट्ठा होनी शुरू हो गई थी। इस समय पंद्रह-बीस आदमी इकट्ठे हो गए। भीड़ में तेज़ी से नवलविहारी ने दृष्टि घुमाई, परंतु वहाँ किसी की आँख में सलूक या सहानुभूति का चिह्न न पाया।

परंतु उस भीड़ में लखपत को भी आता हुआ देखकर दफ़्तर जाने की उतावली कम हो गई, और उससे बोले—

"देखते हो सेठजी, लड़ने के लिये यह आदमी कैसा तत्पर दिखलाई पड़ता है। मैं बड़ी देर से मार-पीट बरका रहा हूँ। तुम इस बात के गवाह हो।"

लखपत भीड़ के पीछे-पीछे ही खड़ा कहने लगा—"हमें साहब, लड़ाई-झगड़े से मतलब ही क्या है ? परंतु हाँ, झगड़ा बढ़ाने से कोई फ़ायदा नहीं। आप दफ़्तर जायँ। चौधरी साहब, तुम भी अपना काम देखो।"

सीताराम बोला—"मुझे तो अब इसके सिवा और कोई काम ही नहीं रह गया है कि मूर्ति के उलटनेवाले को समग्र हिंदू-समाज से सज़ा दिलवाऊँ। अरे पंडितजी, इससे तो मूर्ति को कहीं छिपाकर ही रख देते, और कह देते कि अंतर्धान हो गई। क्यों देवता को उलटकर पुरखों को लजाया ?"

नवलविहारी का मुख अंगारे-जैसा लाल हो गया। दाँत पीसकर कुछ कहा, जिसे किसी ने नहीं सुना। रंग दूसरी तरह का देखकर लखपत खिसकने को हुआ, परंतु पंडितजी उसकी ओर देखकर बोले—"क्यों सेठ, क्या तुम भी इसी तरह के नास्तिकों में से हो ? क्या कलियुग में देवता अपना प्रभाव नहीं दिखला सकते ?"

"आप दफ़्तर जाइए।" लखपत ने कहा। फिर भीड़वालों की ओर रुख करके बोला—"आप लोग भी अपना-अपना काम देखें।"

भीड़ में से एक व्यक्ति ने कहा—"यही है न वह पंडितजी,

जिन्होंने मूर्ति को लौट-पौटकर अपनी बिरादरीवालों से बदला चुकाने की हिकमत निकाली है। तभी तो..." कुछ और कहना चाहता था, परंतु भीड़ के शोर-गुल में बात पूरी करने की आकांक्षा लीन हो गई।

नवलविहारी ने लखपत से कड़ककर कहा—"क्यों जी, तुम भी मुँह चुराते हो ? तुम्हें भी तो सच्ची बात मालूम है ?"

परंतु भीड़ का मिज़ाज काफ़ी गरम था। लखपत यदि नवलविहारी की सहायता भी करना चाहता, तो न बन पड़ती। उलटे, अनायास ही, और ज़रा उत्साह के साथ बोला—"पंडितजी, यह न समझना कि मैं निरा घोंघा हूँ, और केवल सुनी हुई बातों को ही माने बैठा हूँ। मैंने कई विद्वान् शास्त्रियों से पूछा है। वे सच कहते हैं कि यह काम देवता का किया हुआ कदापि नहीं। आगे भगवान् जानें।" और वहाँ से चल दिया।

पीताराम को भीड़ में अपने उद्‌गार प्रकट करने के लिये काफ़ी अवकाश देकर नवलविहारी दफ़्तर चले गए।

(४६)

बहुत अल्प समय में ही नवलविहारी ने देख लिया कि सिवा उनके थोड़े-से अंध-भक्तों के बाक़ी सब हमदर्द पीछे रह गए। शहर-भर यही चिल्लाता था कि नवलविहारी ने अच्छा नहीं किया। नवलविहारी पुकार-पुकारकर भी कहते कि घटना दैवी है, तो भी शायद ही कोई सुनता। उन्हें लोग एकांत छोड़ देते, सो भी उन्हें नसीब न था। पहले के मित्र और

मुलाक़ाती फिर से अनुष्ठान और मूर्ति-स्थापना के लिये ज़ोर दे रहे थे। हाँ में हाँ मिलाकर भी लोग यही कहते कि अनुष्ठान कराओ। कोई टीकाराम इत्यादि के दल को बहिष्कृत करने या और किसी तरह से परेशान करने की बात भी न सोचता था।

नवलविहारी ने कहा—"सबने मुझे ही पापी ठहरा रक्खा है!"

तब एकमात्र आश्रय की ओर ध्यान गया—रामसहाय वैद्य। एक दिन संध्या के उपरांत अकेले में उनसे मिले।

रामसहाय पूछने लगे—"यह सब क्या हुआ पंडितजी?"

"क्या हुआ, क्या बतलाऊँ? कोई विश्वास ही नहीं करता। उलटे मुझे ही लोग बुरा-भला कहते हैं। आपने भी तो उलटी गंगा बहाकर फिर खबर भी न ली।"

मैंने कौन-सी गंगा उलट-पलटकर बहा डाली भाई?"

"पहले बहिष्कार का प्रस्ताव उठाया, पास किया; फिर उसे तोड़-ताड़कर बिलकुल प्रतिकूल प्रस्ताव स्वीकृत कर डाला।"

ख़ूब! सारा शहर एक तरफ़ था। मैं अकेला क्या करता? आपने ही अकेले रहकर क्या कर लिया?" रामसहाय यह कहते ही हँस पड़े।

दुखी होकर नवलविहारी बोले—"आपको सिवा हँसने के और कुछ नहीं सूझता।"

और भी हँसकर वैद्यराज ने कहा—"अरे यार, मूर्ति को लौटने-पौटने की अक़्लमंदी किसने तुम्हारे दिमाग़ में ठूँसी?"

शायद वह और भी कुछ कहते, परंतु हँसी का स्रोत ऐसा फूट निकला कि शांत होना कठिन हो गया।

नवलविहारी रोने लगे। उन्हें रोता हुआ देखकर रामसहाय गंभीर हो गए। बोले—"भाई साहब, क्षमा करना। जब कभी मुझे हँसी आती है, बड़ी बेडौल आती है। बोलो, काहे के लिये आए थे?"

रोना बंद करके नवलविहारी ने उत्तर दिया—"अपनी व्यथा सुनाने आया था, परंतु बड़े आदमियों को दूसरों का दुख-दर्द सुनने की फ़ुरसत कहाँ? देख लिया कि सारा संसार ही निठुर है, और कोई किसी का मीत नहीं।"

"मुझसे जो कुछ बन पड़े, मैं उसके लिये तैयार हूँ।"

"आप समर्थ हैं; चाहें, तो इस बखेड़े को मिटा सकते हैं। मैंने मूर्ति नहीं गिराई—चाहे दैवी कृत्य हो, चाहे किसी मनुष्य का किया हुआ हो। आप इसका निर्णय कर दीजिए। यदि आपकी आज्ञा होगी, तो मैं ही अपने ख़र्च से अनुष्ठान कराके मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा करा दूँगा, अन्यथा यह कार्य जनता के चंदे से होना चाहिए, क्योंकि मैं बिलकुल निर्दोष हूँ।"

रामसहाय ने पूछा—"तो क्या मूर्ति अब भी ज्यों-की-त्यों उलटी पड़ी है?"

उत्तर मिला—"नहीं, मैंने मूर्ति को उठाकर खड़ा कर दिया है, परंतु जब तक पुनः प्राण-प्रतिष्ठा नहीं की जाती, कोई नित्य-कृत्य नहीं किया जा सकता।"

"इसका निर्णय तो पंचायत में ही हो सकता है।" रामसहाय ने कहा।

"आप जैसा जानें, वैसा करिए।" नवलविहारी बोले—"मैं बहुत बेचैन रहा करता हूँ। नित्य-कृत्य नहीं होता। पूजा-पाठ बंद है। मन को बड़ी ग्लानि रहती है।"

शीघ्र उचित प्रबंध करने का रामसहाय ने विश्वास दिलाया।

(५०)

मूर्ति के मामले की छान-बीन करने के लिये चौथे दिन नवलविहारी के मंदिर में ही पंचायत हुई—इतनी बड़ी कि शायद ही पहले कभी हुई हो। लोगों में इतना उत्साह इससे पहले बहुत कम देखा गया था। रामसहाय प्रधान पंच थे।

नवलविहारी ने धैर्य के साथ आद्योपांत दुर्घटना कह सुनाई। माली ने भी कहीं-कहीं घटा-बढ़ाकर उनका समर्थन किया। जब उसने उस रात मंदिर के ऊपर विमानों के उड़ते रहने की बात कही, तब उस पंचायत में से एक आवाज़ आई—"पं० नवलविहारी ने भी ये विमान उड़ते हुए देखे या नहीं ?"

रामसहाय ने डाँटकर कहा—"दूसरे की पूरी बात बिना सुने ही ठठोली मत करो।" उस सभा में यह बात स्पष्ट झलक रही थी कि क़रीब-क़रीब संपूर्ण उपस्थित जनता आरोपी के रूप में थी, और नवलविहारी प्रतिवादी के रूप में।

इन दो बयानों के बाद चर्चा सार्वजनिक तर्क-वितर्क की शतसः धाराओं में बह पड़ी। एक ओर थोथा अनुमान और

दूसरी ओर सबल एवं निर्बल दलीलें उसके विरोध में पेश की जाने लगीं। और बारंबार रामसहाय का मुखापेक्षण होने लगा। कभी तीव्र स्वर में कभी विनय-पूर्वक नवलविहारी सब आरोपों और युक्तियों का उत्तर देने की चेष्टा करने लगे। हल्ला काफ़ी बढ़ चुका था। रामसहाय ने एक युक्ति सोची। मन-ही-मन प्रसन्न हुए। सबको चुप करके बोले—"इस बात का निर्णय युक्तियों से होना असंभव मालूम पड़ता है। चिट्ठी डालकर भगवान् से निपटारा करा लो। एक चिट्ठी में 'दोषी' लिखो और दूसरी में 'निर्दोष'। फिर किसी छोटे, अनजान बालक से चिट्ठी उठवाओ। यदि 'दोषी' की उठे, तो पं० नवल-विहारी को शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त, गंगास्नान, अनुष्ठान, प्राण-प्रतिष्ठा इत्यादि सब कुछ करना पड़ेगा, और यदि 'निर्दोष' की उठे, तो उन्हें कुछ न करना पड़ेगा। अनुष्ठान और मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा हम लोग अपने रुपए से करेंगे।"

झगड़े को खत्म कर देनेवाली इस सीधी राह को क़रीब-क़रीब सबने स्वीकार कर लिया। दो चिट्ठियों की गोलियाँ बनाई गईं, और ठाकुरद्वारे के सामने रक्खी गईं। बाहर से एक छोटा-सा बालक बुलाया गया। जिस समय वह बालक चिट्ठी उठाने को हुआ, पंचायत में ऐसा सन्नाटा छा गया कि सुई गिरती, तो शब्द सुनाई पड़ जाता।

लड़के ने चिट्ठी उठाकर रामसहाय के हाथ में दे दी। पास बैठे हुए लोग रामसहाय के और पास खिसक आए। पीछे-

वाले खड़े हो गए, और आगे बढ़ने लगे। कौतूहल-वश इन सबका जी तड़पा जा रहा था। और, नवलविहारी ? आँखें एकटक, निश्चल। परंतु होंठ सूख रहे थे।

रामसहाय ने चिट्ठी खोली। पढ़कर दिखलाई और सुनाई। उसमें 'दोषी' लिखा था।

"न्याय हो गया! धर्म का निर्वाह हो गया!" एकाएक कठोर निनाद की गूँज हवा को छेदकर दिशाओं में फैल गई।

अवनत-मुख नवलविहारी से मंगल ने कहा—"क्यों पंडितजी, क्या धर्म की बात इसी तरह रक्खी जाती है ?"

और भी अनेक वाक्यों की वर्षा हुई।

टीकाराम, जो अभी तक किसी तरह की बहस में भाग नहीं ले रहे थे, बोले—"इन बातों से कोई लाभ नहीं। सबसे ग़लती होती है। जितना पंडितजी से संभव और सह्य हो, उतना प्रायश्चित्त कर लीजिए। बातें करके इन्हें और अधिक मत दुखाइए।"

रामसहाय ने नवलविहारी से कहा—"जो कुछ होना था, सो हो गया, परंतु आगे शांति के साथ रहना चाहिए। पंडितजी, जमानत और मुचलकेवाले मुक़द्दमे का राज़ीनामा कल ही कर लीजिए।"

नवलविहारी चुप रहे। नीची गरदन किए रहे।

रामसहाय ज़रा तेज़ होकर बोले—"लड़ोगे, तो होगा कुछ

नहीं। जिन अधिकारियों या दूसरे लोगों की आशा किए बैठे हो, उन्हें दूर से ही नमस्कार करो। उनका और तुम्हारा यथार्थ उद्देश्य एक नहीं हो सकता।"

नवलविहारी ने नीचा सिर किए हुए आह खींचकर केवल "अच्छा" कह दिया।

(५१)

पंचायत के बाद मंगल सीधा घर आया। बाबूराम भी साथ था।

बाबूराम ने हाँफते हुए आकर सबसे पहले मंगल की मा को पंचायत का समाचार सुनाया। वह सुनकर चुप रही।

सोमवती बोली—"तुम लोगों ने चिट्ठी उठानेवाले को मिला लिया होगा।"

"हमने नहीं, भगवान् ने मिलाया।" बाबूराम बोला—"उसने ऐसी मुँह की खाई, जैसी चाहिए। मुँह सूख गया था। ऐसा जान पड़ता था, मानो रोए देता हो। सब अकड़ भूल गई। सारी नवाबी धूल में मिल गई।"

सोमवती ने कहा—"उस दिन हम लोगों को दर्शन तक नहीं करने देता था, और स्वयं कैसा राक्षसी काम किया! उससे तो ऐसा प्रायश्चित्त कराना चाहिए, जिसे वह छ जन्मों में भी न कर सके।"

फूलरानी ने कहा—"अपना-जैसा जी सबका जानो। हम लोग दंड देनेवाले कौन हैं? अपने भाग्य को सराहो कि हम लोगों पर आँच नहीं आई।"

इतने में मंगल और टीकाराम आ गए। सोमवती भीतर चली गई। टीकाराम अपनी पत्नी से यह कहकर मकान के दूसरे भाग में भजन-पूजन के लिये चले गए कि "सुन तो लिया ही होगा ? न्याय हो गया।"

मंगल बोला—"मा, मैंने आज सभा में अपने मन की पूरी बात न सुना पाई। नवलविहारी ऐसा नीच आदमी है कि ढूँढ़ने पर भी न मिलेगा।"

"और भी बहुत-से भरे पड़े हैं।" फूलरानी ने कहा—"किसी का कृत्य ऊपर उतरा पड़ता है, और किसी का छिपा रहता है। तुमने भरी सभा में कुछ नहीं कहा, सो अच्छा ही किया।"

"मा," मंगल बोला—"मा, हमारा समाज ऐसी मूढ़ता में उलझा हुआ है कि आगे बढ़ने में घोर कठिनाई हो रही है।"

फूलरानी ने जरा गंभीर होकर, परंतु मुस्किराहट के साथ कहा—"तुम्हें जो करना हो, करो; पर व्याख्यानवागीशी बंद कर दो, इससे चार प्रसन्न होते हैं, तो छ अप्रसन्न।"

मंगल बड़े उत्साह के साथ बोला—"अवश्य करूँगा मा। तुमने मुझे जन्म दिया, मुझे बचाया; तुम्हारे ऋण से उऋण होना तो असंभव ही है, परंतु यदि कुछ भी न कर पाया, तो वास्तव में मैं बड़ा पापी और तुम्हें लजानेवाला ठहरूँगा।"

"चुप-चुप।" उसकी मा ने कहा—"बात बढ़ाने की तेरी आदत कभी न जायगी।" इतने में हरीराम वहाँ आ गया।

फूलरानी बोली—"क्यों हरीराम, तुम्हारी बिरादरी ने तुम्हें मिलाया या नहीं ?"

"चाहे जगत् इधर का उधर हो जाय," हरीराम खूब हँसकर बोला—"परंतु हमारी जात के पंच दो बोतल शराब लिए बिना न मानेंगे; और, चाहे सारा ब्रह्मांड टूट-फूटकर धूल हो जाय, मैं शराब पिलाऊँगा नहीं। इसलिये मैं तो जात से बाहर ही अच्छा। ब्राह्मणों का अन्न खाकर क्या शराब पिऊँगा ?"

बाबूराम ने खूब विकृत स्वर में गाकर कहा—"मंगल-भवन, अमंगलहारी।" और बोला—"कहो दादा, यह किसका स्वर है ? याद है ?"

स्वर सुनते ही मंगल की स्मृति जाग उठी। बाबूराम के अनुकरण में कोई कसर नहीं थी। समझने में देर न लगी। कहा—"वाह पट्ठे, बिलकुल भैंस जैसा रेंका। ठीक नवलविहारी की तरह।"

और, स्वयं वैसे ही विकृत स्वर में गाया—"मंगल-भवन, अमंगलहारी।"

भीतर के एक कोठे से सोमवती के हँसने की आवाज़ निकल पड़ी। फूलरानी भी मुस्किराहट न रोक सकी। मंगल और बाबूराम दोनो देर तक हँसते रहे। परंतु हरीराम को आश्चर्य था कि यह सब क्या पागलपन है !

परिचय

इस कहानी में वर्णित मूर्ति के लौट डालने की घटना सन् १९२७ के अंत या १९२८ के आरंभ की है। उसका जो कुछ निर्णय पंचायत में हुआ था, वह सच्ची घटना है। प्रायश्चित्त से और मंदिर में देव-दर्शन के समय फ़साद से संबंध रखने-वाली बातें भी सच्ची हैं। मलाबार की जो कथा इस कहानी में कही गई है, वह काल्पनिक है। जिन व्यक्तियों के कारण वे घटनाएँ घटित हुई थीं, उनका नाम और स्थान इस समय नहीं बतलाया जा सकता।

लेखक